सिद्धयोग

संपादक :
योगयोगेश्वर [illegible] चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 320

ी सिद्धगुफा प्रकाशन [illegible]-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 49, अंक : [illegible]
जुलाई - 2015

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति॥

— चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यम्भावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति॥

— अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे–तैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 48 जूलाई 2015 अंक : 4

वाञ्छा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।

अर्थात्

साधु संगति में जिनकी इच्छा बनी रहती है। परगुणों में प्रीति बनी रहती है। गुरु चरणों में नम्रता बनी रहती है। विद्या अर्जन ही जिनका व्यसन है। अपनी धर्मपत्नी में ही जिनकी रति रहती है लोकापवाद से जिनको भय रहता है भगवान शंकर में भक्ति बनी हुई है आत्मनिग्रह में शक्ति बनी हुई है। जो दुर्जनों के संग से मुक्त रहते हैं। जिनमें ये गुण निवास करते हैं – उन मानवों को हमारा नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	श्री मद्‌भागवत में योग परिचर्चा– *डॉ. विजय सिंह*	13
4.	ध्यान योग से भगवत्प्राप्ति – डॉ. जे.पी.शर्मा	17
5.	स्कन्ध चालन	26
6.	संघर्ष करो–संघर्ष करो – श्रीमती शारदा सिसौदिया	29
7.	अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस – आचार्य डॉ. दासलाल	30
8.	योग – आसन	32
9.	योग वाशिष्ठ से साभार	34
10.	योग सिद्ध आश्रम पुरानी मंडी में विशाल योग शिविर	36
11.	काया व्यू की रचना	39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

निःश्रेयस सिद्धि की साधना

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सद्गुरुदेव के शक्तिपात के द्वारा सद्यः प्रतीति होना, श्रद्धा वीर्यस्मृति समाधि आदि के द्वारा योगध्यान का प्राप्त होना एवं ईश्वर प्रणिधान करने से अभिमत वस्तु, समाधि का प्राप्त होना आदि-आदि विषय विस्तार से खोल करके स्पष्टीकरण के साथ प्रकाशित करा दिये गये हैं। आशा है सभी साधकों ने उनको ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा और समझा होगा कि ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा आवर्जित किया ईश्वर साधकों को अपनी कृपा पूर्वक समाधि प्रदान करता है। यह भी एक प्रकार का अनादि कालीन महासिद्ध ईश्वर का शक्तिपात ही है। इस प्रकार के इन सभी विषयों का वर्णन कर देने के बाद श्री पतंजलि महाराज ने अपने 'योगदर्शन' में और भी कुछ अनुपम साधनों का वर्णन किया है जिनका अवलम्ब लेने वाले साधकों को अवश्य ही आत्मानुभूति का सीधा मार्ग मिलता है और वे साधक मन की एकाग्रता के कारण शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्षीभूत परम श्रेय को प्राप्त कर लेते हैं। इनमें से सर्व प्रथम प्राणायाम है।

प्राणायाम की अमर साधना

भगवान पतंजलि देव लिखते हैं कि-

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

अर्थात् प्राण को बाहर निकाल करके कुम्भक बढ़ाने से एवं आभ्यन्तर कुम्भक बढ़ाने से अनायास ही मन की एकाग्रता का अनुपम लाभ होता है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी निम्नांकित पंक्ति लिखते हैं-

कोष्ठयस्य वायोर्नासिका पुटाभ्यां प्रयत्न विशेषाद् वमनं प्रच्छर्दनम्, विधारणम् - प्राणायामः, ताभ्यां वा मनसः स्थिति सम्पादयेत्।।

अर्थात् शरीर के भीतर की वायु को बाहर फेंकने को प्रच्छर्दन कहते हैं और भीतर को खींचने को विधारण कहते हैं। इन दोनों को करने से मन की एकाग्रता का लाभ होता है। श्री मनु जी महाराज अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं-

दह्यते हि ध्यायमानानां धातूनां यथा मला। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते मला प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् जिस प्रकार से सोना, चाँदी आदि धातुओं के मल को अग्नि में तपा कर दूर कर दिया जाता है इसी प्रकार से इन्द्रियों के मल प्राणायाम से दूर हो जाते हैं।

प्राणायाम भी एक प्रकार का तप है। तप का लक्षण पिछले लेखों में बता दिया गया है

'द्वन्द सहनं तप:' सर्दी गर्मी भूख प्यास के जोड़े को सहना तप कहलाता है। प्राणायाम करने में भी स्वाभाविक द्वन्द सहन होता है क्योंकि प्राण की साधारण गति चलते रहने से सुख मिलता है और प्राण की गति को रोक दिया जाय तो मन उसमें कष्ट का अनुभव करता है, इसी का नाम द्वन्द सहन है। सर्दी–गर्मी आदि में भी सर्दी को सहन एवं गर्मी को सहन करना, इसी का नाम द्वन्द–सहन है। भगवान पतंजलि देव तप का फल बतलाते हुए योग दर्शन में लिखते हैं –

कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।।

इस सूत्र पर व्यास जी का भाष्य –

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं तदावरण मलापगमात् काय सिद्धि: अणिमाद्या, तथेन्द्रिय सिद्धि= दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति।

अर्थात् बराबर किया हुआ तप अशुद्धि के आवरण को खत्म कर देता है। उस आवरण के समाप्त हो जाने से अणिमादिक कायसिद्धि और इसी प्रकार ऐन्द्रिय सिद्धि दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि सिद्धि उपलब्ध होती हैं। यह तप का ही महान प्रभाव है और योग में प्राणायाम से बढ़कर किसी दूसरे तप को नहीं माना है। जहाँ–जहाँ मनुष्य तप के प्रभाव से अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करता है उसी प्रकार प्राणायाम से प्राण और मन पर कन्ट्रोल करता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है।

यत्र प्राणोलीयते तत्र मनो लीयते।

अर्थात् जहाँ पर प्राण लय हो जाता है वहाँ मन लय हो जाता है और इसी प्रकार राजयोग की साधना द्वारा –

यत्र मनो लीयते तत्र प्राणो लीयते।

अर्थात् जहाँ मन लय होता है वहाँ प्राण भी लय हो जाता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है। जिसने प्राण पर कण्ट्रोल कर लिया समझ लेना चाहिए कि उसने मन पर भी कण्ट्रोल कर लिया इन दोनों में किसी एक की साधना करने से दूसरे की साधना स्वाभाविक ही हो जाती है। इसलिए जो मन के ऊपर नियन्त्रण करना चाहते हैं उनके लिए प्राणायाम करना एक अमूल्य एवं अनुपम साधन है। इस उत्तम साधन को करने वाला व्यक्ति शनैः शनैः अवश्य ही निश्रेयस सिद्धि को पा लेता है। प्राणायाम हठ की साधना है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह प्राणायाम के अनुकूल शुद्ध वातावरण में ही इस साधना को करें। प्राणायाम की साधना के लिए हठयोग के परम उपदेशक हठयोग प्रदीपिका के रचयिता योगी आत्माराम ने हठाभ्यासी योगी के लिए एक सुन्दर मठ निर्माण का आदेश दिया है। वह मठ ही प्राणायाम के अभ्यासी के लिए उपयुक्त साधना–स्थली हो सकता है।

श्री आत्माराम जी ने मठ निर्माण का उपदेश इस प्रकार किया है :–

अल्प द्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम्।

सम्यग्गोमय सान्द्र लिप्त, ममलं नि:शेष जन्तूज्झिम्।।
वाह्ये मण्डप वेदि कूप, रुचिरं प्राकार संवेष्टितम्।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभि:।।

अर्थात् योगाभ्यासी के लिए एक ऐसे सुन्दर मठ की आवश्यकता है, जिसका छोटा दरवाजा हो (और वह उत्तराभिमुख होना चाहिए) जिसकी जमीन समतल हो। किसी प्रकार के बिल वगैरह न हों ऊँचे–नीचे गड्ढे न बने हों बहुत ऊँचा न हो और बहुत नीचा भी न हो गोबर से सुन्दर अच्छी प्रकार लेपन किया हो, जिसमें किसी प्रकार के मच्छर तथा जीव जन्तु न हों। उसके सामने सुन्दर मण्डप वेदि आदि बनी हुई हों। एक ओर सुन्दर मीठे जल का कुँआ हो और जिसकी चहार दीवारी बनी हुई हो। इस प्रकार का सुन्दर मठ हठाभ्यासियों के लिए उपयुक्त साधना स्थल रहता है। हठाभ्यासी को चाहिए प्राणायाम का अभ्यास करने से पहले प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाले तीन बन्धों के अभ्यास पहले से कर लें, ताकि अभ्यास काल में इनका उपयोग किया जा सके। उन बन्धों का वर्णन 'हठयोग प्रदीपिका' में इस प्रकार किया है –

मूलबन्ध

पार्ष्णिभागेन संपीडय, योनिमाकुंचयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूत्रबन्धोऽभिधीयते।।

अर्थात् दोनों पैरों की एड़ी अर्थात् टांकने से सीमनी को दबाये और उस भाग का आकुंचन करे, अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण करे, इसी का नाम मूल बन्ध है। मूलबन लगा करके यदि उड्डियान बन्ध लगाया जाय तो अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण अवश्य–अवश्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने मुखारविन्द से इन्हीं भावों को स्पष्ट रूप से कहा है।

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापान गती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा:।।

अर्थात् अपान के अन्दर प्राण का हवन और प्राण के अन्दर अपान का, इस प्रकार से प्राणापान गतिरोधन करने से योगियों को प्राणायाम सिद्ध होता है। जिस समय योगी पवनाभ्यास का हठी मूलबन्ध लगा करके उड्डियान से प्राण का ऊर्ध्वाकर्षण करता है तो वह अपान ह्रदय देश में रहने वाले प्राण तक आकर्षित हो जाता है और उसी प्रकार ऊपर से जलन्धर बन्ध लगा देने से प्राण की गति अपान की ओर बढ़ जाती है , इस प्रकार प्राणापान की एकता से योगी लोग प्राणायाम परायण रहते हैं।

उड्डियान की विधि

विधि बतलाने से पहले योगाचार्य आत्माराम योगी उड्डियान शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहते हैं–

बद्धो येन सुषम्नायाम् प्राणस्तूड्डीयते यत:।

तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभि: समुदाहृतम्।।

उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रातं महाखग:।

उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र बंधोऽभिधीयते।।

अर्थात् जिसके कारण से सुषुम्णा के अन्दर प्राण उड्डान करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान कहा गया है। जिस प्रकार से एक बड़ा भारी पक्षी आकाश में उड़ा करता है इसी प्रकार से प्राण देह रूपी आकाश में इस बंध के द्वारा गति करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान बंध है।

उड्डियान बंध की विधि

उदरे पश्चिमं तानं, नाभेरुर्ध्वंच कारयेत्।

उड्डीयानो ह्यसो बंधो मृत्युमातंगकेसरी।।

अर्थात् पेट में नाभि से ऊपर के हिस्से में पश्चिम उत्तान करे अर्थात् (नाभि मण्डल को प्राण के ऊर्ध्वाकर्षण के द्वारा तनाव दे) इसी का नाम उड्डियान बन्ध है। जिस प्रकार से हाथी के ऊपर बबर शेर हमला कर देता है और उसको गिरा देता है इसी प्रकार यह बंध मृत्यु पर जय प्राप्त कराने के लिए अनुपम है।

उड्डीयान तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।

अभ्यसेत्सततं यस्तु, वृद्धोऽपि तरुणायते।।

नाभेरुर्ध्वमधश्चापि, तानं कुर्यात्प्रयत्नत:।

षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशय:।।

सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानक:।

उड्डियाने दृढे बन्धे, मुक्ति: स्वभाविकी भवेत्।।

श्री गुरुदेव ने इस उड्डियान बंध को साधारण रूप से बतला दिया किन्तु फल इसका महान है। जो साधक इसका दृढ़तर अभ्यास करता है वह चाहे वृद्ध भी है तो भी अवश्य ही तरुणता को पा जाता है। जो साधक नाभि के ऊर्ध्व और अधोभाग को पश्चिम की ओर उत्तान करता है (पीठ की ओर) तनाव देता है वह छ: महीने के अभ्यास से बिना किसी संशय के अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। यह उड्डियान बन्ध सभी बन्धों में उत्तम है। इस बन्ध का अभ्यास हो जाने के बाद साधक अवश्य ही मुक्ति पा जाता है। उड्डियान बन्ध कर लेने के बाद साधक को अवश्य ही जालन्धर बन्ध का अभ्यास करना चाहिए, उसकी विधि इस प्रकार है –

जालन्धर बन्ध की विधि

कंठमाकुंच्य हृदये, स्थापयेच्चिबुक दृढ़।

बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशक:।।

बध्नाति हि शिराजाल–मधोगामि नभो जलम्।
ततो जालंधरो बन्धः कंठ दुःखौघनाशनः।
जालंधरे कृते बंधे, कंठ संकोच लक्षणे।
न पीयूष पतत्यग्नौ, न च वायुः प्रकुप्यति।।
कंठ संकोचनेनैव, द्वेनाड्यौ स्तम्भयेद्दृढम्।
मध्य चक्रमिदं ज्ञेयं, षोडशाधार बंधनम्।।

अर्थात् कंठ का आकुंचन करके ठोड़ी की दृढ़ता से छाती में लगा दे इसी का नाम जालन्धर बन्ध है। यह बन्ध बुढ़ापे और मौत का नाश करने वाला है। क्योंकि यह बन्ध अधोगामि शिरा नाड़ियों के जाल को बाँधता है। इसलिए इसका नाम जालन्धर बन्ध है। कंठ का आकुंचन करने वाले जालंधर को कर लेने के बाद चन्द–मण्डल से स्रवित होने वाला अमृत अग्नि में नहीं गिरता, और न ही वायु का प्रकोप होता, यह बंध इड़ा पिंगला का स्तम्भन करके कंठ में स्थित षोड्शाधार विशुद्ध चक्र के बन्धन का कारण है। साधक को चाहिए कि मूलबन्ध के द्वारा गुदाद्वार का आकुंचन करके उड्डियान बन्ध लगाये और उड्डियान लगाने के बाद कंठसंकोचन लक्षण रूप जालंधर बंध को लगाये। जो साधक इन तीन बन्धों को लगा करके प्राणायाम का अभ्यास करता है वह अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। साधक को चाहिए कि प्राणायाम से पहले इन तीनों बन्धों का अभ्यास बना ले। क्योंकि प्राणों पर कन्ट्रोल करने के लिए यह तीनों बन्ध परम श्रेयस्कर हैं। वस्तुतः प्राणपक्षी को यथार्थता से बाँधने में यह तीनों बन्ध ही सामर्थ्य वाले हैं। कुम्भक प्राणायाम से पहले साधक को चाहिए कि प्राण की गति को अधिक से अधिक लम्बी करना सीखे जिससे प्राणायाम काल में मनुष्य अपनी उस अमर साधना में पूर्णरूपेण सफल हो सके। योगी पवनाभ्यास से पहले ही निम्नांकित विधि से प्राण पर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देते हैं। उसका रूप इस प्रकार है पवनाभ्यासी साधक समकाय शिरोग्रीव होकर सिद्धासन, स्वस्तीकासन अथवा पद्मासन से बैठ जाय। उसके बाद अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्षिण नासिका के छिद्र को हलका सा दबा करके बायीं नासिका से ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए शनैः शनैः श्वांस को खींचे। श्वास को इतनी धीमी गति से खींचे जिससे वह ॐ शब्द कम से कम 16 मात्राओं से अन्दर जा सके, जब बाह्य वायु पूर्ण रूपेण अन्दर चला जाये तो पहले उसे रोकने का प्रयत्न न करे प्रत्युत कोष्ठगत वायु को दक्षिण नासापुट से उसी प्रकार से प्रणव की 16 मात्रा गिनते हुए शनैः शनैः निकाल दे, प्राण बाहर निकाल देने के बाद प्राण में थोड़ी सी घबराहट आयेगी जिससे प्राण पुनः जल्दी से अन्दर जाने की चेष्टा करेगा। किन्तु उस प्राण को यकायक अन्दर नहीं जाना चाहिए। प्रत्युत 16 की अपेक्षा दक्षिण नासापुट से प्रणव की 15 मात्रा गिनते हुए अन्दर ले जाय और पुनः फिर उसी प्रकार बायें नासारन्ध्र से ॐ की 15 मात्रा गिनते हुए निकाल दे। उसके बाद उसी नासिका से 14 मात्रा से ले जाय और दक्षिण नासिका से 11 मात्रा से ही प्राण बाहर निकाल दे, इसी प्रकार करते हुए प्राण की एक–एक मात्रा

घटाते हुए प्राण को समगति पर ले आए। यह भी एक प्रकार का प्राणायाम ही है। एवं नाड़ी शोधन का ही एक प्रकार है। ऐसा करने से साधक प्राण की गति पर नियन्त्रण कर लेता है। हमारे आचार्यों ने पवनाभ्यासी को सबसे पहले नाड़ीशोधन प्राणायाम करने का आदेश दिया है। उपरोक्त प्राणायाम भी नाड़ी–शोधन का ही एक प्रकार समझना चाहिए। यह साधन हठावलम्बी साधकों का प्रारम्भिक साधन है। एवं पवनाभ्यासी सन्तों का अनुभूत है। इसका अभ्यास करने वाला साधक आगे की कठिन साधनाओं में कभी भी अभिभूत नहीं होता है। अतः कुम्भक प्राणायाम करने से पहले साधक को चाहिए कि इस रेचक पूरक को अभ्यास की दृढ़ता से बढ़ाता रहे और कम से कम 6 मास तक इसका अभ्यास करे। उसके बाद वह साधक प्राण जप का अधिकारी बन जाता है। एक बात का और अवश्य विचार रखना चाहिए, कि इस अमर साधना का अभ्यास अधिकारी को ही करना चाहिए जो जिस विद्या का अधिकारी है वही उसको पा भी सकता है। अनधिकारी प्रवेश होने का प्रयत्न करता है तो वह स्खलित हो जाया करता है और बाद में इस प्रकार का साधक अपनी कमी न बतलाकर इस अमर विद्या के अन्दर दोष–दर्शन करता है और अन्य उत्साही साधकों को भी श्रेय मार्ग से च्युत करने का प्रयत्न करता है।

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

भगवान श्री महादेव जी ने योगाधिकारी साधक के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं –

महावीर्यान्वितोत्साही मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शीलश्च निर्मोहश्च निराकुलः।।
नव यौवन सम्पन्नो मिताहारी जितेन्द्रियः।
निर्भयस्च शुचिर्दक्षो दाता सर्व जनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रियंवदः।।
शास्त्र विश्वाससम्पन्नो देवता गुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च महव्याधि विवर्जितः।।
अधिमात्रतरोज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः।।

अर्थात् महावीर्यवान्, परम उत्साही, बुद्धि कौशल से मन के भावों को तत्काल समझने वाला, शूरवीर, शास्त्रों का ज्ञाता, अभ्यास शील, मोह और व्याकुलता से रहित, नवयौवन संपन्न, मिताहारी, जितेन्द्रिय, निर्भय, पवित्र, सभी कार्यो के करने में चतुर, दाता, सबको सहारा देने वाला, सब प्रकार से अधिकारी दृढ़, बुद्धिमान्, स्वायत्त चेष्टा सहन शील, सुशील, धर्मचारी, मृदुभाषी, मन के रहस्य को गुप्त रखने वाला, शास्त्र विश्वास सम्पन्न देवता एवं गुरुदेव का पूजक, जन संग रहित किसी प्रकार की व्याधि से ग्रसित न हो इस प्रकार का साधक उत्तम योगाधिकारी है। ऐसे साधक को पूर्ण आस्था एवं विश्वास पूर्वक अभ्यास करने से बहुत

जल्दी सिद्धिप्राप्त होती है और इसके अतिरिक्त जो लोग श्रद्धाहीन है वह अपने लक्ष्य को पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं कर सकते।

न भवेत् संगयुक्तानां, तथा विश्वासिनामपि।

गुरु पूजा विहीनानां तथा च वहुसंगिनाम्।।

मिथ्यावादरतानां च, तथा निष्ठुरभाषिणाम्।

गुरु संतोष हीनानां न सिद्धि: स्यात् कदाचन्।।

जो लोग कुसंगी हैं अविश्वासी है और गुरुदेव की पूजा से विहीन हैं जन–संग में पड़े रहते हैं, झूठ बोलते हैं और कठोर बोलते हैं गुरुदेव को संतुष्ट नहीं कर सकते ऐसे लोग कभी भी सिद्धि – भाजन नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त –

फलिस्यतीति विश्वास: सिद्धे: प्रथम लक्षणम्।

द्वितीयं श्रद्धयायुक्त, तृतीयं गुरुपूजनम्।।

चतुर्थ समताभावं, पञ्चमेन्द्रिय निग्रहम्।

षष्ठं च प्रमिताहार, सप्तम नैव विद्यते।।

जो लोग विश्वास करने वाले हैं, श्रद्धा युक्त हैं, गुरुपदपूजक हैं, समत्व बुद्धि युक्त है, इन्द्रिय निग्रह युक्त ब्रह्मचारी हैं, और मिताहारी हैं ऐसे लोग थोड़े समय में ही सिद्धि को पा जाया करते हैं। साधक को चाहिये यत्न पूर्वक अपने अभ्यास को बढ़ाता रहे और उपरोक्त अभ्यास को दृढ़ता पूर्वक करता रहे। ऐसा करने से वह साधक हठ विद्या का उत्तम अधिकारी हो जायेगा। मनुष्य को कभी किसी साधना का स्वयं अवलम्ब नहीं लेना चाहिए। अनुभवी गुरु के द्वारा हठ विद्या को प्राप्त करना चाहिए। हमारा यह प्राचीन भारतीय विज्ञान है –

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।

अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदु:खदा।।

अर्थात गुरु मुख से प्राप्त हुई विद्या वीर्यवती होती है और पूर्ण फल की दात्री होती है जो विद्या इधर–उधर के प्रयास से या न जानने वाले अनधिकारियों से एवं कर्ण परम्परा से प्राप्त की जाती है, वह विद्या निर्वीर्य रहती है और कई प्रकार के कष्ट पैदा करती है। अत: श्री गुरुदेव के कृपा–प्रसाद और प्रसन्नता से ही विद्या प्राप्त करना चाहिए। विद्या की सफलता में गुरुदेव का आशीर्वाद ही अटल साधन है –

गुरु सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।

अविलम्बेन विद्यायास्तस्या फल मवाप्नुयु:।।

अर्थात् जो लोग गुरुदेव को सन्तुष्ट करके विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, वे लोग अविलम्ब ही उस विद्या को पा जाते हैं एवं सब कार्यों में सफल रहते हैं।

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा – व्यास पूजा का पावन पर्व आषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्तअद्भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति उस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है–

गुरु गोविन्द दोनो खड़े काके लागू पॉव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। **'गृह्णाति उपदिशादि धर्मलिमति –गुरुः'** जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देवगन्धर्वा दिभिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है।''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व– (गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्मपूर्ण है। उपनिषद् में मन्त्र आता है।''पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।'' अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त हो के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वै सः'' कहकर ब्रह्म को रसरूप माना है। रसों का मूल स्त्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है। अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्त्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब से मानवाकृति में आते हैं

तब वे अपने सदुपदेश से अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मल के शोधन के लिए भिन्न –भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोग वश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य-समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इवा''** – यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है– ऐसा गुरुगीता का वचन है। ''नास्ति तत्वं गुरोः परम''। गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीव और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है –

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम् ।
नित्यबोधचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम् ।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबौध स्वरुप, चेतन और आनन्द रुप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मन्त्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्म शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

''गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धि: स्याद्कदाचन''। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नही रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नही होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अत: शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्य नही रह जाता । इस बार गुरु –पूर्णिमा 31 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृत पर्व को अत्यन्त धूम धाम से मनावें ताकि उन्हें भुक्ति–मुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख – ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो !

जय गुरुदेव !

मनोनिग्रह का अभ्यास

गीता की यह शिक्षा कि सच्चा सन्यास आसक्ति रहित कर्म में है, संसार का त्याग करने मे नहीं, कोई ऐसी उपपत्ति नहीं है, जिसे संसार का त्याग करने के अनिच्छुक लोगों के समर्थन अथवा सफाई के लिए प्रस्तुत किया गया हो। वह मनुष्यों के जीवन को प्रत्यक्षत: गढ़ने के लिए आधार के रूप में प्रतिपादित की गई है, जिससे कि उनमें नि:स्वार्थता और अलिप्तता की आदत तथा स्फूर्ति विकसित हो। बत्तख पानी में तैरती है, परन्तु बाहर निकलने पर अपने शरीर का सब पानी झाड़ देती है। हमें उसी के समान संसार में रहना सीखना चाहिए। हमारे काम में दक्षता, सुघारता और कुशलता का अभाव न हो और फिर भी हम स्वार्थपूर्ण आसक्ति को विकसित न होने देने के लिए सतर्क रहें। अलिप्तता का यह भाव कायम रखने के लिए मनोनिग्रह का सतत् अभ्यास आवश्यक है।

श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

पंचम स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में श्री भरत जी ने राजा रहुगण को प्रतीक रूप में भवाटवी (संसार–जंजाल रूपी जंगल) का वर्णन किया है और लोग राग – द्वेष में पिस–पिस कर यमालय जा रहे हैं। प्राणी जहाँ जाकर आजतक न वापस लौटा है और न इस भवाटवी को पार करने के लिये परमानन्दमय योग की ही शरण ली है – **" आवर्ततेऽद्यापि कश्चिदल वीराध्वनः पारमुपैति योगम् "**। रहुगण ने भक्तिभाव से नतमस्तक होकर श्री भरत जी से बोले– प्रभो ! आपके दो घड़ी के सतसंग से मेरा कुतर्क मूलक अज्ञान नष्ट हो गया है। भरत जी के उपदेश से रहुगण का संशय ही नष्ट नहीं हुआ अपितु उनके सतसंग से परमात्म तत्व को जान कर देहात्मबुद्धि को त्याग भगवदाश्रित होकर जीवन यापन किया। चौदहवें अध्याय में भवाटवी को विस्तार से समझाया गया है। संसार सागर को पार करने हेतु योग की महत्ता उपर्युक्त श्लोक में वर्णित करते हुये सिद्ध संग रूपी सतसंग की अनिवार्यता बताई गयी है।

सम्प्रज्ञात समाधि रूपी योग की गति परमात्मा तक नहीं है जो महात्मा सर्व वृत्ति निरोध रूप कैवल्य प्राप्त हैं वे निवृत्ति परायण, संयतात्मा ही परमात्मा को प्राप्त करते हैं –

यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा
मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ।। 39।। स्क.5 अ.14

जिस समय श्री भरत जी मृग शरीर का त्याग कर रहे थे उस समय उन्होंने उच्च स्वर से कहा था कि धर्म रक्षा करने वाले, धर्मानुष्ठान में निपुण, योगगम्य, सांख्य के प्रतिपाद्य, प्रकृति के अधीश्वर यज्ञमूर्ति सर्वान्तर्यामी श्री हरि को नमस्कार है – **" योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय "** ।

पन्द्रहवें अध्याय में श्री भरत जी (जड़भरत नहीं) के वंश परम्परा का विशद वर्णन आया है उनमें भगवान विष्णु के कलावतार महाराज गय का विस्तार से वर्णन किया गया है। महाराज गय निरन्तर भगवच्चिन्तन करके तथा ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के चरण सेवा करके भक्तियोग की प्राप्ति की थी। उनका अहं भाव नष्ट हो गया। वे अपने आत्मा को ब्रह्मरूप अनुभव करते हुये, पृथ्वी का पालन करते रहे –

भगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्ध मतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोअपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ।। 7।।

सोलहवें अध्याय में भुवनकोश का वर्णन विस्तार पूर्वक भगवान श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित के प्रश्न के उत्तर में वर्णित किया है। उन्होंने कहा– राजन परमात्मा की माया के गुण विस्तार वाला भुवन कोष का वर्णन देवताओं जैसी आयु वाला भी नहीं पूरा–पूरा कह सकता। इस अध्याय में एक ऐसे पर्वत का वर्णन आया है जिस पर चार सरोवर भी हैं – जो क्रमशः दूध, मधु, ईख के रस और मीठे जल से भरे हैं। इनका सेवन करने से योगसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं – **" योगैश्वर्याणि स्वभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति "।**

सत्रहवें अध्याय में श्री गंगा जी का उद्भव की कथा वर्णित किया गया है। अट्ठारहवें अध्याय में भिन्न–भिन्न वर्षों का वर्णन किया गया है। यही बीज मंत्र भी बताये गये हैं।

उन्नीसवें अध्याय में किम्पुरूष और भारतवर्ष का वर्णन आया है। श्री हनुमान जी का निवास किम्पुरूष वर्ष में बताया गया है। यहाँ निवास करने वाले गन्धर्वादि भगवान राम की उपासना गायन द्वारा करते रहते है। राम नर रूप में साक्षात श्री हरि ही हैं। राम आश्रित वत्सल हैं जब स्वयं दिव्यधाम को गये थे, तब अयोध्यावासियों को भी अपने धाम ले गये। इस अध्याय में बताया गया है कि दयावश नर–नारायण रूप धारण कर संयमशील पुरुषों पर, अनुग्रह करने के लिये ही अव्यक्त रूप से भगवान भारत वर्ष में तप रत हैं।

इस भारत वर्ष में भगवान नारद जी स्वयं नारायण द्वारा उपदेशित सांख्य और योगशास्त्र तथा भगवन्महिमा को वर्णित करने वाले पांचरात्रदर्शन का वर्णन वर्णाश्रमधर्मावलम्बियों को करते हैं तथा इस मन्त्र का जाप और स्तोत्र का गायन करते हैं – **" सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावेतोपसरति इदं चाभिगृणाति "। ॐ नमो भगवते उपशमशीलायो परतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनाराणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः।।**

योगेश्वर ! हिरण्यगर्भ भगवान ब्रह्माजी ने योगसाधन की सबसे बड़ी कुशलता यही बतलायी है कि मनुष्य अन्तकाल में देहाभिमान छोड़कर भक्तिपूर्वक आपके प्राकृत गुण रहित स्वरुप में अपना मन लगावे।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं, हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो, भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः।।

इस अध्याय में भारतवर्ष के पर्वत–नदियों के नाम गिनाये गये हैं। देवता भी इस भारत वर्ष में मनुष्य योनि पाने के लिये लालायित रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग में भोगों की अधिकता के कारण स्मृति शक्ति छिन जाती है, अतः देवताओं को कभी श्री नारायण के चरण कमलों का चिंतन होता ही नहीं।

बीसवें अध्याय में अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोक पर्वत का वर्णन किया गया है। इन

द्वीपों के अधिपतियों के नाम और गुण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। किसी–किसी वर्ष के ऋतव्रत, सत्य व्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायाम द्वारा अपने रजोगुण–तमोगुण को नष्ट कर महान समाधि के द्वारा वायुरूप श्री हरिकी उपासना करते हैं –

तद्वर्ष–पुरुषा ऋतव्रत सत्यव्रत दानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं
प्राणायामविधूतरजस्तमस: परमसमाधिना यजन्ते।।27।। स्क 5 अ. 20

लोकालोक पर्वत का परिचय देते हुये कहा गया है कि सूर्य आदि से प्रकाशित और अप्रकाशित भूभागों के बीच में स्थित है। परमेश्वर अपनी योगमाया द्वारा विविध लोकों को रचकर उसकी व्यवस्था हेतु स्वयं किसी न किसी रूप में कल्प पर्यन्त वहाँ रहते हैं। लोकालोक अन्तर्वर्ती भूभाग का जितना विस्तार है, उसी से उसके दूसरी ओर के अलोक प्रदेश के परिणाम को समझना चाहिए। इसके आगे तो केवल योगेश्वरों की ही ठीक–ठीक गति हो सकती है –

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोका लोकाचलात्।
तत: परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ।।42।। स्क 5 अ. 20

इक्कीसवें अध्याय में सूर्य रथ एवं उसकी गति का विवरण विस्तार से किया गया है। भूमण्डल के नौ करोड़, इक्यावन लाख योजन लम्बे घेरे में से प्रत्येक क्षण में सूर्य देव दो हजार योजन की दूरी पार करते हैं।

बाइसवें अध्याय में इसी प्रकार भिन्न–भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का वर्णन किया गया है।

तेइसवें अध्याय में शिशुमार चक्र का वर्णन किया गया है। भगवान की योगमाया के आधार पर स्थित इस सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र को शिशुमार (सूँस) के रूप में वर्णन करते हैं। ज्योतिष शास्त्र को जानने वालों के लिये ये अध्याय पठनीय तथा मनन् करने योग्य हैं।

चौबीसवें अध्याय में राहु आदि ग्रहों की स्थिति के साथ अतलादि नीचे के लोकों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

पच्चीसवें अध्याय में भगवान सङ्कर्षण देव का विवरण और स्तुति किया गया है।

देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनिगण भगवान अनन्त का ध्यान किया करते हैं। इनके नेत्र निरन्तर प्रेम मद से मुदित, चंचल और विह्वल रहते हैं। वे मधुर वचनों से अपने पार्षद और अन्यों को तोष देते हैं। " **ध्यायमान: सुरासुरोरगसिद्ध गन्धर्व विद्याधर मुनिगणैरनवरतमद मुदित विकृत विह्वल लोचन:** "।

छब्बीसवें अध्याय में नरकों की विभिन्न भयावह गतियों का वर्णन किया गया है। राजा परीक्षित ने भगवान शुकदेव जी से पूछा – भगवन ! ये नरक इसी पृथ्वी के कोई देशविशेष हैं अथवा त्रिलोकी से बाहर या त्रिलोकी में ही किसी जगह हैं ?

श्री शुकदेवजी ने कहा – राजन ! नरक त्रिलोकी के भीतर ही हैं तथा दक्षिण की ओर पृथ्वी से नीचे जल के ऊपर स्थित है। इधर ही पितृगण भी रहते हैं, वे अत्यन्त एकाग्रतापूर्वक अपने वंशधरों के लिये मंगल कामना किया करते हैं। भगवान यम पितृराज हैं वे यहीं अपने सेवकों सहित रहते हुये, भगवान की आज्ञा में बद्ध मृतप्राणियों को उनके दुष्कर्मों के अनुसार पाप का फल दण्ड रूप में देते हैं।

किन–किन दुष्कर्मों का फल किस प्रकार के नरक में भेजकर भुगतान कराया जाता है। इसका सविस्तार वर्णन किया गया है। इक्कीस प्रकार के नरक लोकों का विवरण यहाँ दिया गया है।

इस प्रकार पाँचवें स्कन्ध में पृथ्वी, उसके द्वीप, वर्ष, नदी, पर्वत, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, समुद्र, पाताल, दिशा, ज्योतिर्गण और भिन्न भिन्न लोकों की स्थिति का वर्णन किया गया है। जीव समुदाय इसी भगवान के स्थूल रूप में आश्रय पाये हुये हैं।

शोक संवेदना

- बड़े दु:ख से सूचित करते हैं कि सागर (म.प्र.) निवासी श्री अनिरुद्ध पाण्डेय का 5 जून को देहावसान हो गया है। वे गुरुदेव के पुराने शिष्य थे और लगभग 50 वर्ष की आयु थी। वे म.प्र. पुलिस विभाग के सागर शाखा के योग शिक्षक थे। उन्हे सिर का ट्यूमर हो गया था जो असाध्य था। उनके पीछे परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती अर्चना तथा तीन लड़के हैं। इस असामयिक वियोग के दु:ख से पीड़ित परिवार को श्री प्रभु जी दु:ख सहने की शक्ति दें तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें। सिद्धयोग परिवार उनके निधन पर गहरा शोक प्रकट करता है।

- श्री गुरुदेव की जन्म भूमि अलुपुर निवासी पं. ताराचन्द जी का भी 06 जून को देहावसान हो गया है। वे गुरुदेव के पुराने शिष्यों में से एक थे तथा 81–82 वर्ष के थे। उनके देहावसान पर भी सिद्धयोग परिवार व आश्रम वासी अपना हार्दिक दु:ख प्रकट करते हैं।

ध्यान योग से भगवत्प्राप्ति

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पौटा साहिब, जि. सिरमौर, हि.प्र.

योग के आठ अंङ्गों में से ध्यान योग का सातवां चरण है। यह समझ लेना नितान्त आवश्यक है कि ध्यान क्या है ? " **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्** " अर्थात् जहाँ चित्त को लगाया जाय उसी में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान कहलाता है। जब ध्येय वस्तु में मन एकाग्र हो जाय वही ध्यान है। भगवत्प्राप्ति के जितने साधन हैं वे सब भगवान को मानने वालों के लिये हैं। मानने वालों में भी लाभ वही उठा पाते हैं जो प्रायः श्रद्धा भक्ति से ओतप्रोत रहते हैं। जिनमें सच्चीलगन, प्रयत्नशीलता तथा तत्परता होती है। आलसी मनुष्य कुछ नहीं कर सकते। कुछ ऐसे होते हैं जो भगवत चर्चा सुनकर गदगद हो जाते है और विचारते है कि मैं भी इसी प्रकार भगवान की भक्ति में जुट जाऊँगा। परन्तु कुछ समय बाद उनका वह उत्साह धीरे–धीरे ठंडा पड़ जाता है। ऐसे लोग जीवन में सफल नहीं हुआ करते। कर्मशील प्रधान लोग साधन जुटाकर तत्परता से अपने प्रयास में लग जाते हैं तथा अपने लक्ष्य तक पहुँचकर ही रहते हैं। अतः साधकों को चाहिये कि अपने लक्ष्य अथवा ध्येय को ध्यान में रखकर सच्ची निष्ठा से लगन के साथ ध्येय प्राप्ति में लग जाय। इधर–उधर ताकने–झाकने की आवश्यकता न पड़े। तभी उन्हें पगपग पर सफलतायें मिलेंगी। सफलतायें जब मिलती हैं तब मुनष्य और अधिक उत्साह से प्रत्यनशील रहा करता है। अच्छे कार्यों में शीघ्रता अवश्य करनी चाहिये क्योंकि जीवन का समय कम है।

ध्यान योग में प्रथम बात है अपने मन को लगाने की। जो वस्तु तुम अच्छा मानते हो या जो भी आपको अधिक प्रिय है। उसकी तरफ प्रायः मन बार बार जाता है। मन में जो लगन लगी हो, स्वाभाविकरूप से हमारा मन उसी की तरफ अधिक आकृष्ट होता है। उसके मन में ध्येय पदार्थ (लक्ष्य) को पाने की 'धारण ' दृढ़ होती है। जब यही धारणा निरन्तर एकाकार बन जाती है, उसे समय वह धारणा " ध्यान " में बदल जाती है। मन में अपने ध्येय वस्तु के अतिरिक्त और कुछ न दिखाई दे, चित्त की उसी स्थिति को ध्यान कहा जाता है।

ध्यान की बड़ी महिमा है। पूर्णयोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता में कहा है कि जो पुरुष विषयों का निरन्तर ध्यान करता रहता है उसका चित्त सदैव विषयों में ही उलझा रहता है। परन्तु जो मेरा ध्यान करता है, वह मुझ में लीन हो जाता है। भक्तियोग, ज्ञान योग, राज योग, लययोग, मन्त्र योग, हठयोग, तथा निष्काम कर्म योग किसी न किसी रूप में सभी योगों में " ध्यान " की बड़ी आवश्यकता तथा उपयोगिता है। ध्यान से ही भगवान के स्वरुप में समाधि और ध्यान से ही भगवान की प्राप्ति होती है। अच्छे ध्यान साधक के लिये योग के प्रथम छः सोपानों (चरणों), यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा के अपनाने की अति

आवश्यकता होती है। जिनके बिना ध्यान पथ पर आरुढ होना दुर्लभ होता है। अन्त:करण की सफाई के लिये ये साधन बड़े सहायक होते हैं।

" अच्छे ध्यान साधक के लिये कुछ रहस्यमयी भाव तथा बातें "

साधक को गुरुवचनों पर अथाह विश्वास तथा श्रद्धा रखनी चाहिये। हिन्दुशास्त्रों, वेदों पुराणों पर प्रत्यक्ष विश्वास रखें। अपने योग साधना पथ पर सदैव तत्परता से आगे बढ़ते रहें। इन्द्रियों तथा मन को सांसारिक विषयों से दूर रखें। तन मन से अहिंसा अपनायें। सत्य भाषण करें तथा झूठ बोलने से परहेज करें। किसी तरह की चोरी या चोरी का भाव न आने दें। सदैव ब्रह्मचर्य का पालन करें। गृहस्थी सद्गृहस्थ अपनायें। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, भगवत चर्चा, प्रार्थना, एकान्तवास, विषयों से मुक्ति, अनावश्यक वस्तुओं का सर्वथा त्याग, अन्न, वस्त्र, स्थान आदि आवश्यक वस्तुओं का भी यथा सम्भव कम से कम संग्रह करें। अपने ध्येय सम्बन्धी ग्रन्थों के पठन पाठन, ध्येय के गुण प्रभाव और रहस्य की बातें सुनना, ध्येय के विपरीत कुछ भी न सुनना, न देखना, तथा न करना, घर–परिवार में ममता का त्याग करना, दुराग्रह न करना चाहिये। अखबारों का पढ़ना, दूरदर्शन देखना, चलचित्र देखना, सभा–समितियों का चलाना भी ध्यान साधक को वर्जित है। मनुष्य को अपने मान, सम्मान, से बचना ही चाहिये। किसी की व्यर्थ में चर्चा न करें, अपशब्द न कहें। सदैव मृदु भाषी रहें तथा यथोचित कम बोलें। मौन धारण करने का अभ्यास करें। साधक राजस तथा तामसिक वृत्तियों से सदैव दूर रहें। नशीली वस्तुओं के सेवन से बचें तथा निरन्तर मंत्र जाप करते रहें।

ध्यान साधक सदैव " अष्ट मैथुन " से दूर रहे। मनुजी महाराज ने आठ प्रकार की मैथुनों का वर्णन किया है। यथा –

" स्मरणं कीर्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।

संकल्पोऽध्यवसायश्च, कियानिष्पत्तिरेव च ।। "

पुरुषों के लिये स्त्रियों से, तथा स्त्रियों के लिये पुरुषों से स्पर्श करना, दर्शन करना, स्मरण करना, उनके बारे में विचार करना, साथ साथ खेलना, कीर्तन आदि करना, आपस में बातें करना, तथा मैथुन करना ये आठ प्रकार के मैथुन कहे गये हैं। इनसे साधकों को बचना ही चाहिये।

ध्यानयोगी साधक को अपने शरीर की बाहरी तथा आन्तरिक सफाई की अति आवश्यकता है। आन्तरिक सफाई प्राणायाम, आसनों आदि से संभव होती हैं। ध्यान करने के अनेकों तरह के ढंङ्ग तथा विधियां हैं जिन्हें साधक अपनी रूचि, अभ्यास तथा सुगमता के आधार पर चुन सकता है। आवश्यकता केवल मन को शान्त तथा दृढ़ रखने की होती है। मन में दृढ संकल्प रहे कि परमात्मा सत्य है और वह एक है। उसके रूप अनेक हैं। अनेक रूपों में रहने पर भी उसमें एक रूपताँ । उसे पाने के अनेकों साधन हैं। साधक भक्त अपनी इच्छानुरूप कोई

भी साधन अपना कर भगवान की समीपता पा सकता है। मानव उसी एक परमपिता का अंश है। इसीलिये "**ईश्वर अंश जीव अविनाशी**" कहकर पुकारा गया है। जब जीव का मिलन उस परम ईश्वर के साथ होता है उसे ही "योग" कहा गया है। उस परम ब्रह्म परमात्मा को निर्गुण, निराकार, सगुण, साकार आदि रूपों में बताया गया है। आज कलियुग का समय चल रहा है। इसलिये निर्गुण–निराकार ईश्वर केवल कल्पना मात्र ही हैं क्यों कि आँखें साक्ष्य माँगती हैं। आँखें देखकर ही विश्वास करती हैं। इसलिये सगुण–साकार ब्रह्म ही यथार्था कहा जा सकता है। सत्य ही ब्रह्म हैं। ऐसा मैं मानता हूँ। इस ब्रह्माण्ड में चाँद, सूर्य, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, तारे, सप्तऋषि, पृथ्वी सारे अपनी अपनी परिधि में ही घूम रहे हैं। जिस दिन ये अपने अपने रास्ते से भटक जाएँगे तो महाविनाश महाप्रलय हो जायेगा। इसीलिये "ब्रह्म सत्य–जगत मिथ्या" वाली बात सत्य प्रतीत होती है, ये शब्द पूज्य आदि शंकराचार्य जी महाराज के कहे गये है। ब्रह्माण्ड बनने से पूर्व ब्रह्म निर्गुण–निराकार था। परतु जब ब्रह्म ने इच्छा एक से अनेक होने की करदी तब ब्रह्म अपनी एकता खोकर अनेकता में आ गया ऐसा मेरा विचार है। उसी से अनेकों ब्रह्माण्डों की रचना हुई। उसी ब्रह्म से शिवजी, श्री गणेश जी, श्री हरि विष्णु जी, चतुर्मुखी ब्रह्माजी, श्रीराम, श्री कृष्ण,जगत जननी पार्वती, आदि प्रगट हुये। अत: ब्रह्म की एक रूपता अनेकों ब्रह्मों में बंट गयी। इन रूपों में ब्रह्म साकार तथा सगुण बन गयें। अत: ये ब्रह्म की शक्तियाँ अनेक रूपों में होते हुये भी उसी एक ब्रह्म का अंश ही हैं। हम किसी भी रूप का ध्यान करें, हमारी सत्यनिष्ठा एक ही रहे। साधक को अपने इष्ट पर विश्वास तथा सच्ची श्रृद्धा रखनी ही चाहिये। एक का पीछा करते करते मूल ब्रह्म तक पहुँच ही सकते हैं। जैसे दिल्ली जाने के अनेकों मार्ग है तथा अनेकों साधन है। हम किसी एक मार्ग का अनुशरण करते करते किसी भी साधन से अपने गनतव्य दिल्ली पहुँच जायेंगे। अगर रास्ते में कुछ दूर चलकर, फिर मार्ग बदल लिया, फिर दूर चले, तीसरा मार्ग बदल लिया, तब हम अपने गन्तव्य पर न पहुँच सकेंगे और अगर पहुँचे तो काफी विलम्ब और परेशानियों के साथ। उसकी लीला अपरंपार है उसे कोई नहीं जानता। किसी ने कुछ जाना वही समझा। किसी ने उसे शंकर रूप में, किसी ने श्री विष्णु रूप में, किसी ने गणेश रूप में तथा किसी ने महामाया पार्वती, राम, कृष्ण आदि रूपों में जाना तथा व्यक्त कर दिया। पर मार्ग भिन्न होते हुये भी पहुँचना तो गनतव्य अर्थात दिल्ली ही है उसी प्रकार किसी भी देवी–देवता का अनुशरण करते हुये एक सत्य चिन्मयानन्द परम पिता परमात्मा के पास ही जाना है।

ध्यान करने के अनेकों प्रकार हैं। ध्यान अभेद या भेद अथवा अद्वैत या द्वैत– दोनों भावों से किया जाता है। अभेद ध्यान के निर्गुण , निराकार, सगुण निराकार, निर्गुण साकार तथा सगुण साकार चार भेद हैं। इसी प्रकार भेद में भी भगवान के ध्यान के निर्गुण– निराकार, सगुण निराकार, निर्गुण साकार तथा सगुण साकार चार भेद हैं। इन सब रूपों में एक ही सत्य तत्व अनुभूतित है तथा वह सब में सब जगह पूर्ण रूप से व्याप्त है। उसे आज तक तत्व से कोई नहीं

जान सका। उसे तो स्वयं भगवान ही जानते हैं।

ध्यान योग के साधक को ध्यान करने से पूर्व यह जान लेना परमावश्यक है कि ध्यान साधना के लिये उपयुक्त स्थान, समय, तथा आसन कौन सा सर्वोत्तम है? तथा उसे किस आसन में ज्यादा समय बैठकर ध्यान करने में सुगमता रहेगी।

स्थान :– ध्यान साधक के लिये एकान्त, पवित्र स्थान सर्वोत्तम होते हैं। ऐसे स्थान जहाँ हिंसा, चोरी, व्यभिचार, छल, कपट, झूठ का व्यवहार तथा अष्ट मैथुन होता हो कदापि उपयुक्त नहीं होते। जहाँ जप, यज्ञ, अनुष्ठान हवन, संकीर्तन, भजन, प्रभु पूजन, आरती तथा भगवत चर्चा आदि होते चर्चा हो, ध्यान के लिये उपयुक्त होते हैं। नदियों का किनारा, बाग, बगीचे, रसोई बगिया, घास के मैदान, देवालय, के शान्त वातावरण वाले स्थान ज्यादा ठीक रहते हैं। स्थान हवादार, खिड़कियों वाला जिसमें प्रकाश के लिए रोशदान की सुविधा हो ध्यान के लिए चुना जाया शोरगुल न रहता हो। स्थान प्राकृतिक छटाओं से परिपूरित हो तो सर्वोत्तम रहता है। अपने इष्ट देव अथवा भगवानो के फोटोचित्र, कलेंडर आदि अपने सामने रखकर ध्यान शीघ्र लगता है। स्थान की सफाई का विशेष ध्यान देना चाहिये। सामने घी ज्योति, प्रज्ज्वलित करके धूप बत्ती जलाकर रखने से ध्यान स्थल का वातावरण शुद्ध सुगन्धमय बन जाने से साधक का ध्यान अच्छा लगता है।

समय :– ध्यानयोगी के लिये रात्रि का समय अन्तिम पहर अथवा सुबह उषाकाल का होता है। उस समय मन, बुद्धि दोनों ही निर्मल रहते हैं। स्वाभाविक रूप से सात्विकता रहती है। ध्यान के लिये मन संस्कार शून्य रहना उपयुक्त होता है। अत: उषाकाल नींद से जागकर आदमी अपने को तरोताजा स्वस्थ महसूस करता है। वैसे दिन के अन्य समयों में भी ध्यान लगाया जा सकता है। परन्तु भोजन, तथा नास्ता या कुछ खाने पीने के बाद ध्यान करना ठीक नहीं रहा करता। जब मन प्रसन्न चित्त हो तब ध्यान प्रगाढ़ रूप से होता है।

आसन:– जहाँ ध्यान को बैठे वह स्थान, स्वच्छ, समतल, हवादार होना चाहिये। आसन न अधिक ऊँचा तथा न ज्यादा गहरा होना चाहिये। कुश तथा मृग चर्म के आसन हमारे पूर्वजों ने बैठने के लिये सर्वोत्तम बतलाये हैं। ध्यान सदैव पूर्व या उत्तर की तरफ मुँह करके ही करना चाहिये। ब्रह्मचारी लोगों को पद्मासन या स्वास्तिक आसन उपयुक्त होते हैं। गृहस्थ लोग सुखासन में बैठकार ध्यान कर सकते हैं। जिस आसन में बैठकर ज्यादा देर तक ध्यान कर सकते हैं उस बैठने की विधि को सुखासन कहा जाता है। जिसमें बैठने से सुख की अनुभूति होती है, वही सुखासन है। बार – बार आसन बदलना ठीक नहीं रहता। ऐसा करने से ध्यान भी नहीं लगा करता।

ध्यान काल :– मेरे श्रध्येय सदगुरु जी का आदेश रहा है कि प्रतिदिन तीन घंटे तक ध्यान करना चाहिये तथा कम से कम एक घंटे तक गुरुमंत्र जप। अगर इतना न कर सकें तो कम से कम सुबह, दोपहर तथा शाम को एक–एक घंटे ध्यान में बैठना उपयुक्त होता है। स्नान

आदि से निवृत होकर सन्ध्या पूजा अर्चना करके नित्य ध्यान करना ही चाहिये। सन्ध्या–पूजन करने से चित्त शान्त व निर्मल हो जाता है जिससे ध्यान अच्छा लगता है। ध्यान के लिये सुखासन में सीधे बैठें। सिर, गर्दन तथा कमर सीध में रहें। आँखें बन्द करके निश्चल मन से प्रभू स्मरण करें। अपने गुरु मंत्र का श्वास–प्रश्वास में जाप करते रहें। ध्यान के साथ मंत्रजाप करने से ध्यान में प्रगाढ़ता भी आती है तथा प्रभु कृपायें भी शीघ्र होती हैं। चित्त शून्य हो कर ध्यान करते रहें। नाक के अग्र भाग पर आँखों की दृष्टि रखने का उपक्रम बन्द आँखों से करें। आँखों की दृष्टि सदैव पृथ्वी धरातल के समानान्तर रहनी चाहिये। बन्द आँखों से निश्चल भाव से बैठकर मंत्र धीरे–धीरे जपते रहें। मानसिक जप करें। होंठ हिलें तक नहीं। दृष्टि एकाग्र कर दें। ऐसा करते ही धीरे–धीरे ध्यान लगना शुरू हो जाता है। साधकों की जानकारी हेतु निम्न ध्यान की विधियाँ बतलायी जा रही हैं। साधक अपनी रूचि के अनुसार उनमें से किसी एक का अनुशरण कर सकते हैं।

"विभिन्न ध्यान की विधियाँ"

1. आँखें बन्द करके नासिका के अग्रभाग पर देखते हुये साधक सीधे स्थिर अपने आसन में बैठ जाय। अपने चित्त का अवलोकन करें तथा जो भी दिखाई दे उसे कल्पना मात्र समझते हुये उसका त्याग करें तथा निश्चल बैठे–बैठे फिर चित्त में स्फुरण पैदा होगा उसे भी त्याग दें। जब मन–इन्द्रियों की सत्ता न रहे तथा केवल मात्र वृत्ति ही शेष रह जाय, उसे समझलें कि ध्यान होने लगा है। यही वृत्ति शुभ तथा शुद्ध है। सारे प्रपंच अदृश्य हो जाते हैं। केवल मात्र चेतन घन परमात्मा ही रह जाते हैं। वही असीम तथा अनन्त है। उसी ने सब भोक्ता–दृष्टा वृत्तियों को ग्रस लिया है और अब वह नितान्त परिपूर्ण अकेला है तथा सर्वत्र उसी की चेतना है।

2. निश्चल भाव से सीधे बैठकर आँखें बन्द करे। मन के द्वारा दसों इन्द्रियों के द्वारों को रोककर बार – बार अपने इष्ट या भगवान के स्वरुप का मनन करे। जो कुछ भी स्फुरणा आवे उसी में परमात्म भाव जाग्रत करें। ऐसा करते करते मन में स्फुरण आना बन्द हो जायेगा। परन्तु उन स्फुरणों में हमेशा परमात्मा का भाव बना रहे। केवल मात्र एक परमात्म भाव शेष रह जायेगा। यही बोध ध्यान बन जाता है।

3. ध्यानी साधक सुखासन में आँखें बन्द करके सीधे बैठें। अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि टिकायें। अब विचार करें कि कमरे में रखे घड़े का आकाश (घड़े के भीतर की खाली जगह) कमरे के आकाश से अलग नहीं है। कमरे का आकाश, बाहर के आकाश से भिन्न नहीं है। उस खुले आकाश में ही सब खुले कमरे बने हुये हैं। उन्हीं में से एक कमरे में घड़ा रखा है। अतः घड़े कमरे वाला आकाश, आन्तरिक वाले आकाश से भिन्न नहीं है और उसी आकाश का एक अंश है। अतः सब जगह एक ही आकाश है। भले ही घड़े तथा कमरे का आकाश महा आकाश से छोटे दिखाई दे रहे हैं। घड़े तथा कमरे का निर्माण भी आकाश के लिये ही हुआ है। घड़े में पानी रखते हैं तथा कमरे में ऐसे कई घड़े रखे जा सकते हैं। परन्तु जैसे घड़ा भर जाने पर अधिक

पानी नहीं भरा जा सकता उसी प्रकार कमरा भर जाने पर अधिक घड़े नहीं रखे जा सकते। पंच्चभूतों में सर्व प्रथम आकाश का ही निर्माण हुआ है। इसी प्रकार व्यष्टि शरीर में से अपने मैं पन को निकालकर विश्वरूप भगवान की समष्टि में स्थिर करे और समष्टि के नेत्रों से समस्त विश्व को अपने शरीर सहित उसी में कल्पित देखे। जैसे यशोदा जी ने भगवान कृष्ण जी महाराज के मुँह के अन्दर संसार और उस संसार में ब्रज के एक गाँव में बाबानन्द जी का घर तथा उसमें श्री बालकृष्ण को और हाथ में लकुटिया लिये अपने को देखा था। इस प्रकार व्यष्टि अहंकार को समष्टि में लय करके फिर उस समष्टि को भी अचिन्तय परमात्मा में लय करे।

"योगेश्वर शिव का ध्यान"

ध्यान करें कि कैलाश पर्वत पर एकान्त में भगवान शिव पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे हुये हैं। सिर, ग्रीवा तथा मेरुदण्ड बिल्कुल सीधा है। उनके दोनों कन्धे बराबर हैं। उनके दोनों हाथ गोद में रखे हैं। ऐसा आभास होता है जैसे कमल खिला हुआ है। जटायें जूड़ा करके सर्पो द्वारा बँधी हैं। दोनों कानों में रूद्राक्ष की मालायें लटक रही हैं। शरीर पर धूनी की राख मली हुई है। नीचे मृगचर्म लपेटा हुआ है। मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित है। गले में सर्पो की माला पड़ी है। दोनों नेत्र नासिका के अग्रभाग पर टिके हैं। नेत्रों से पवित्र ज्योति चारों ओर छिटक रही है। समाधि अवस्था में शरीर के अन्दर की वायु को रोक रखा है, जिसे देखकर ऐसा मालूम होता है मानों जलपूर्ण और आडम्बर रहित बरसने वाले बादल हैं अथवा तरंग हीन प्रशान्त महासागर है। ऐसे समाधिस्थ भोले शिव का ध्यान करें।

"इष्ट सद्‌गुरु देव का ध्यान"

योग साधकों को अपने इष्ट देव का ध्यान बड़ा ही फल देने वाला माना गया है। मेरे सद्‌गुरु देव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, सिद्धों के सिद्ध प्रभु योगेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज जो साक्षात भगवान शिव की प्रतिमूर्ति थे, के ही सदाशिष्य थे। ब्रह्माण्ड की अतुलित शक्तियाँ उनमें समाहित है। आज भी वे अकारण कृपालु अपने बच्चों पर कृपा वर्षा करते रहते हैं। उनके शरीर विग्रह का ध्यान योग साधकों को करना चाहिये। गुरुदेव के पैर के अंगूठे का ध्यान उत्तम माना गया है।

"षटचक्रों का ध्यान"

मानव शरीर में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि पूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र छः चक्र होते हैं। ध्यान योगी साधक इन चक्रों की स्थिति, इनके अधिष्ठाता देवों, दल कमलों की स्थिति, दलों के रंग रूप आदि का ध्यान कर सकते हैं। ध्यान साधक मूलाधार चक्र से ही ध्यान करना आरम्भ करें। अभ्यास करते – करते साधक पंच्च तत्वों पर विजय प्राप्त कर सकता है। ऐसा हमारे पूर्वज मानते आये हैं।

" विपश्यना ध्यान विधि "

विपश्यना ध्यान विधि मेरे अनुमान से उत्तम और सरल है। इसका प्रकाशन " सिद्धयोग " मासिक पत्रिका वर्ष, 2006 अंक 11–12 माह फरवरी–मार्च में हो चुका है। इस विधि में साधक अपनी श्वांस–प्रश्वास की गति पर ध्यान रखता है। श्वास साधारण ढँग से ही चलता रहता है। श्वांस–प्रश्वास की गति होने से पेट अन्दर और बाहर फूलता है। केवल साधक इस गति पर ध्यान देता रहे। श्वांस–प्रश्वास के साथ अगर मंत्र जप कर सके तो सर्वोत्तम है, नहीं तो साधारण रूप से श्वास ले और बाहर निकाले। कुछ ही समय में कल्पनायें आनी शुरू हो जायें। आप उन पर ध्यान दें और पूर्ववत श्वांस–प्रश्वास करते रहें परन्तु पेट के उतार–चढाव पर हर पल ध्यान देते रहें। अगर कल्पनाओं में कुछ दिखाई दे तो कहें दिखाई दे रहा है। परन्तु 'देख रहा हूँ' न कहें। देखने में, " मैं " अथवा अहम्भाव जागृत न होने दें। इस प्रकार कुछ ही देर में वे दृष्य ओझल होती चली जायगी। मन ही मन में कल्पनाओं का अवलोकन करें। अगर ध्यान करते – करते थकान महसूस करें तब मन ही मन कहें थकान हो रही है तब थोड़ी देर में थकान मिट जायगी। फिर पेट की गति पर ध्यान केन्द्रित करदें। ध्यान करते करते दृष्य दिखाई देते हैं। कभी हरे–भरे बाग–बगीचे, नदी नाले, पानी के झरने इत्यादि। उन पर ज्यादा देर मन को न टिकनें दें तथा एक से तीन बार मन ही मन कहें दिखाई दे रहा है, दिखाई दे रहा है ....। थोड़ी देर में अन्य दृष्य उपस्थित होते जायेंगे। परन्तु ध्यान श्वास–प्रश्वास की गति के साथ पेट के उठने–उतरने पर केन्द्रित रखें। कुछ समय के सतत अभ्यास से सर्प नाड़ी अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का जागरण शुरू हो जायगा। उस समय शरीर में गर्म–गर्म पदार्थ बह रहा है, नाड़ियों में शीतल पदार्थ घूम रहा है। पसीना आ रहा है। शरीर ठंडा हो रहा है। सारे शरीर में खारिस हो रही है इत्यादि लगने लगेगा। परन्तु इनके होते हुये भी मन ही मन अवलोकन करते हुये सतत अग्रसर होते रहें।

कभी–कभी ध्यान करते –करते अनुभव होता है कि असह्य पीड़ा हो रही है। कभी लगता दम घुट रहा है। कभी लगता है बदन में कोई सुइयां चुभो रहा है। शरीर पर कीड़े या सर्प रेंग रहे हैं। ये सब मात्र अवरोध होते हैं जो ध्यान बन्द करने पर स्वयं ही हट जायेंगे। यह शरीर के गत जन्मों के संस्कारों के कारण होते हैं। मन की शक्ति प्रबल होती है। साधक का मन ध्यान में लगा रहेगा तो सब बाधायें स्वत: ही दूर होती चली जायंगी। इस प्रकार साधक ध्यान योग में सफलता प्राप्त कर लेगा।

" प्राकृतिक ध्यान विधि "

यह विधि सर्वसाधारण साधकों के लिये बड़ी ही उत्तम विधि है। साधक सब कार्यों से निवृत होकर सुखासन में सीधा बैठे तथा दोनों नेत्रों को बन्द करले। श्वांस–प्रश्वास के साथ भगवद् मंत्रों का जप करे तो विशेष अच्छा होगा। साधारण गति से श्वांस–प्रश्वास करते रहें।

कुछ देर व्यतीत होने पर ध्यान करते – करते कुछ दृष्य स्वत: ही उपस्थित होने लगेंगे। साधक उन्हें देखकर किंचित भी विचलित न हों। चाहे वे दृष्य आपको अच्छे लगें या न लगें, सतत देखते जाँय। धीरे–धीरे वे दृष्य अदृश्य होते चले जायेंगे और नये दृश्य पुन: दिखाई देने लगेंगे। कुछ समय के अभ्यास के बाद साधक का चित्र स्वत: ही एक दृश्य पर टिक जायगा और इस तरह ध्यान लग जायेगा।

"लक्ष्य ध्यान"

ध्यान योगी साधक जब किसी विशेष लक्ष्य पर ध्यान साधना करता है उसे लक्ष्य ध्यान कहते हैं। त्राटक भी लक्ष्य ध्यान में ही आता है। हठयोग साधक प्राय: किसी वस्तु पर ध्यान साधना करते हैं। जलते हुये दीपक की ज्योति पर खुली आँखों से देखते हैं। तब तक देखते रहते हैं जब तक ज्योति दीखना बन्द न हो जाये। आँखों से पानी निकलना शुरू हो जाता है। इसी प्रकार जब योगी साधक मन में संकल्प करता है, आज मैं भगवान गणेश या श्री हरि विष्णु या माता सरस्वती इत्यादि का ध्यान करना चाहता हूँ। मगर ध्यान रहे नंगी आँखों से सूरज का ध्यान न करें। ऐसा करने से आँखें खराब हो सकती हैं। जब कि चन्द्रमा पर ध्यान लगाने से आँखों की रोशनी बढ़ती है तथा मस्तिष्क में शीतलता आती है। धार्मिक चित्रों पर, फोटो रखकर , देवी–देवों के चित्रों पर ध्यान लगाने से ध्यान की स्थिति अच्छी बनती है। बार–बार उन पर ध्यान केन्द्रित करते रहें तब ध्यान अवश्य ही लगने लगता है। जो दृश्य नहीं देखना चाहते उन्हें विनय पूर्वक अवलोकित करते हुये हटाते रहें तथा ध्यान अपने लक्ष्य पर सतत करते रहें। इस प्रकार ध्यान प्रगाढ़ होने लगता है।

"मन-प्रिय ध्यान विधि"

मेरे परम आराध्य सद्गुरु देव प्राय: अपने प्रवचनों में बतलाया करते थे कि साधक का मन चंचल होता है। उसका ध्यान लगना प्राय: कठिन होता है। जब किसी साधक विशेष का मन ज्यादा चंचल प्रकृति–या विकृति का हो तब उसे यह विधि अपनानी चाहिये। प्रत्येक प्राणी को स्वाभाव से कुछ न कुछ प्रिय या अप्रिय वस्तु , देव–देवी, जीव अथवा और कुछ अवश्य होता है। अत: उसे अपनी प्रिय वस्तु चाहे वह कुछ भी हो, पर ध्यान लगाये तथा सतत् अभ्यास करता रहे। ऐसा करने से वह साधक ध्यान के पथ पर चलने लगता है। सद्गुरु देव सुनाया करते थे, परम कृपालु अकारण दयालु योगेश्वर दादा गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज ने मार्ग में जाते समय एक साधारण अनपढ़ ग्रामीण साधक से पूँछा, तुम्हें सबसे प्यारा कौन लगता है? उसने तुरन्त उत्तर दिया " स्वामी जी " मुझे अपना भेड़ का मैंमना सबसे ज्यादा प्यारा लगता है। श्री प्रभुजी ने उससे कहा ! तुम इसी का ध्यान किया करो। वह साधक राम – राम जप करके मैंमने पर ध्यान लगाने लगा। कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात वह साधक अच्छा ध्यानी बन गया।

ध्यान रखें साधक क्रोधावेश तथा द्वेष के अन्तर्गत ध्यान कदापि न करें। ऐसा करने से

दूसरों को हानि हो जाती है तथा उसका भागी स्वयं ध्यानी बन जाता है। ध्यान का उद्देश्य आत्मोन्नति तथा परमार्थ का होता है किसी के अहित करने का कदापि नहीं। ध्यान से मनुष्य की विचार शक्ति, आत्मशक्ति बढ़ती है। मन निर्मल होता है। भव भय बन्धन मुक्त साधक हो जाते है। मानसिक विकार दूर हो जाते है। मनुष्यों में व्याप्त तनाव इत्यादि का समूल नाश हो जाता है। साधक सूक्ष्मता में ही अपने पिछले जन्म–जन्मांतरों के पाप कर्मो से मुक्त हो जाता है तथा कर्माशय शून्यता प्राप्त कर लेता है। अतः साधक अपनी रूची तथा सामर्थ्य के अनुसार उपर्युक्त ध्यान विधियों में से किसी को अपनाकर ध्यान सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अतः ध्यान योग साधना भगवत्प्राप्ति में सहायक होती है।

सद्गुरु शरणं गच्छामि

स्कन्ध चालन

स्कन्ध क्रिया का विशेष प्रभाव **THYROID** व **PARA THYROID GLANDS** पर पड़ता है। यह **GLANDS** क्या है और हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में इनका क्या महत्व है ? इस पर हम विस्तार से विचार करेंगे।

थायरोइड ग्रंथि (**THYROID GLANDS**) : यह ग्रन्थि मनुष्य की ग्रीवा के कुछ नीचे श्वांस नली के दोनों ओर स्थित होती है। इसके दो पिण्डक होते हैं जो ऊपर की ओर फैले रहते हैं, नीचे की ओर जुड़े रहते हैं। ग्रन्थि का प्रत्येक पिण्ड लगभग पाँच सेन्टीमीटर लम्बा व तीन सेन्टीमिटर चौड़ा रहता है। इसका ऊपरी भाग नुकीला और नीचे का भाग चौड़ा होता है। इस ग्रन्थि का रंग भूरा होता है। ग्रन्थि में पीले रंग का हारमोन बनता है, जिसे थाइरोक्सिन (**THYROXIAN**) कहते हैं। थाइरोक्सिन का प्रमुख भाग आयोडीन होता है। भोजन में आयोडीन की कमी से यह ग्रन्थि फूलने लगती है और मनुष्य को घेघा रोग हो जाता है।

इन ग्रन्थियों में रक्त के श्वेत कीटाणुओं की प्रमुख छावनी रहती है अर्थात् यह उनका सबसे बड़ा सुदृढ किला है। यह ग्रन्थि जब तक सशक्त रहती है और अपना कार्य ठीक प्रकार करती रहती है तब तक मनुष्य के ऊपर रोगों का आक्रमण नहीं होता और वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती। जब यह ग्रन्थि ठीक कार्य नहीं करती तब शरीर में रोग के कीटाणु अपना प्रभाव जमाने लगते हैं और मनुष्य स्वस्थ नहीं रह पाता।

पैरा–थाइरोइड ग्रंथि (**PARA THYROID GLANDS**) : इस ग्रन्थि की संख्या चार होती है। दो ग्रीवा में थाइरोयड ग्रन्थि के ठीक पीछे स्थित रहती है। इन ग्रन्थियों का आकार छोटा लगभग 6 सेन्टीमीटर और रंग भूरा लाल होता है। दो ग्रन्थियाँ ऊपर व दो ग्रन्थियाँ नीचे स्थित रहती हैं। पैरा थाइरोयड ग्रन्थि से पैराथ्रिन (**PARATHRIN**) नामक हारमोन निकलता है। इस हारमोन का कार्य रक्त में कैल्शियम और फास्फोरस की मात्रा पर नियन्त्रण रखना है। इस हारमोन की कमी से बच्चों की हड्डियाँ कमजोर व लचीली हो जाती हैं। जब इस ग्रन्थि की क्रियाशीलता कम हो जाती है तब मनुष्य के हाथ पैरों में ऐंठन होने लगती है।

थाइरोयड ग्रन्थि के कार्य के महत्व को समझने के लिए हम एक काल्पनिक उदाहरण का आश्रय लेंगे। हमारे शरीर के रक्त में दो प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं। एक लाल रक्त कीटाणु तथा एक श्वेत रक्त कीटाणु। इनका आकार इतना छोटा होता है कि साधारण आँखों से

नहीं देखा जा सकता। खुर्दबीन से देखने पर पता लगता है कि लाल रक्त कीटाणु का व्यास लगभग 1/3200 इंच तथा मोटाई लगभग 1/1200 इंच होती है। यदि एक करोड़ लाल कीटाणु एक स्थान पर सटाकर रखे जावें तो वे केवल एक वर्ग करोड़ लाल कीटाणु आकार में कुछ बड़े होते हैं। इनका व्यास 1/2500 इंच होता है। अनुमानत: हर पाँच सौ लाल कीटाणुओं पर एक श्वेत कीटाणु होता है।

श्वेत कीटाणु सैनिक हैं और लाल कीटाणु नागरिक हैं। जब कोई रोग कीटाणु शरीर में घुसता है तो श्वेत कीटाणु उसे मार डालते हैं, किन्तु यदि रोग कीटाणु बलवान हुए और श्वेत कीटाणु दुर्बल हुए तो रोग कीटाणु मारते–काटते आगे बढ़ने लगते हैं। परमात्मा ने हमारे शरीर की रचना बड़ी विचित्र की है और रोगों की रोकथाम के लिए अनेक संस्थान बना रखे हैं। जहाँ–जहाँ शरीर में जोड़ है वहाँ–वहाँ श्वेत कीटाणु रूपी सैनिकों की छावनियाँ बनी हैं, और वहाँ श्वेत कीटाणुओं की एक सेना मौजूद रहती है। सबसे बड़ी छावनी व सुदृढ़ किला थाइरोयड ग्रन्थि में है जहाँ अरबों–खरबों की संख्या में इनकी सेना मौजूद रहती है।

रोग कीटाणुओं की एक विशेषता यह है कि जब वे शरीर के किसी एक भाग से प्रवेश करते हैं, तो एक से दो और चार से आठ आदि क्रम से अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं।और श्वेत कीटाणुओं से युद्ध करते हुए रक्त नलिकाओं द्वारा हृदय की ओर बढ़ने लगते हैं। शरीर के जोड़ों पर जहाँ सैनिकों की छावनी है वहाँ जमकर लड़ाई होती है। बहुधा यहीं पर रोग–कीटाणु हार खा जाते हैं और आगे नहीं बढ़ जाते। किन्तु यदि रोग कीटाणु सशक्त हुए और हमारे सैनिक कमजोर पड़ गये तो वे इन छोटे किलों पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं और आगे बढ़ चलते हैं। सबसे बड़ी सेना थाइरायड ग्रन्थि में रहती है, यहाँ सैनिकों की संख्या अधिक होती है और शरीर के अन्य भाग में भी श्वेत कीटाणु सैनिक भाग कर यहाँ सहायता देने पहुँच जाते हैं। यहाँ पर बड़ी भयंकर लड़ाई होती है और उस युद्ध से इतनी ऊष्मा पैदा होती है कि सारा शरीर गर्म हो जाता है, और लोग कहने लगते हैं कि बुखार आ गया। इस किले पर विजय प्राप्त करना साधारण रोग कीटाणुओं के वश की बात नहीं है। यहाँ के युद्ध में रोग कीटाणु व श्वेत कीटाणु भारी संख्या में मारे जाते हैं और उनकी लाशें मवाद, बलगम व दस्त आदि विजातीय द्रव्यों के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जब शरीर में कोई रोग हो जाता है तो मनुष्य औषधि का सहारा लेता है। औषधियाँ श्वेत कीटाणुओं की संख्या को बढ़ाती हैं और उनको बलवान बनाती हैं ताकि वे रोग कीटाणुओं से युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें।

यदि कोई रोग कीटाणु इतना बलवान व शक्तिमान हुआ कि वह थाइरायड ग्रन्थि के किले को भी विजित कर ले तो वह आगे बढ़कर सीधे हृदय पर आक्रमण कर देता है और मनुष्य

की जीवन लीला समाप्त कर देता है। इस ग्रन्थि के आगे कोई ऐसा किला भी नहीं है जहाँ रोग कीटाणुओं को रोका जा सके। कहते हैं कि हैजे के कीटाणु इतने शक्तिवान होते हैं कि शरीर में घुसने के साथ ही मिनटों में लाखों करोड़ों की संख्या में बढ़ने लगते हैं और शरीर के लाल व श्वेत कीटाणुओं को मारते हुए और बीच की छावनियों को ध्वस्त करते हुए एक घण्टे में थाइरायड ग्रन्थि पर पहुँच जाते हैं। शरीर में लाशें ही लाशें हो जाती हैं और वे कै-दस्त के रूप में बाहर निकलने लगती हैं। मनुष्य की शक्ति क्षीण होने लगती है। थाइरायड ग्रन्थि के सैनिक थोड़ा मुकाबला करते हैं मगर उस समय तक हैजे के कीटाणुओं की संख्या महाशंखों में पहुँच जाती है। वे इस बड़े किले को भी विजित करते हुए हृदय पर पहुँच जाते हैं और मनुष्य एक घण्टे में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से मालूम होता है कि हमारे शरीर के थाइरायड ग्रन्थि का कितना बड़ा महत्व है! रोग के कीटाणुओं का आक्रमण निरन्तर हुआ करता है, किन्तु हमारे शरीर के सैनिक उनको मार काट कर खा जाते हैं। यदि हमारी थाइरायड ग्रन्थियाँ मजबूत हैं तो किसी रोगाणु में इतना साहस नहीं है कि वह इस पर विजय प्राप्त कर सके। अतः रोगों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने थाइरायड ग्रन्थियों को बलवान व शक्तिमान बनाए रखें। स्कन्ध चालन से यह ग्रन्थि सशक्त बनी रहती है और उसमें रहने वाले सैनिक कभी भी युद्ध में परास्त नहीं होते।

सर्वांग आसन करने से भी थाइरायड ग्रन्थियों को रक्त की विशेष मात्रा मिलने लगती है और वे बलवान बने रहते हैं। यदि जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को करने के बाद थोड़ा आराम करके सर्वांग आसन व मत्स्यासन कर लिया जावे तो थाइरायड ग्रन्थियाँ बहुत मजबूत हो जाती हैं और उनकी क्रियाशीलता बराबर बनी रहती है एवं तब तक मनुष्य नीरोग बना रहेगा और वृद्धावस्था नहीं आवेगी। सर्वांगासन-मत्स्यासन करने की विधि किसी अनुभवी व्यक्ति से सीखी जा सकती है।

संघर्ष करो संघर्ष करो

– श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

सरिता की गति से मानव सीख सकता है।
अपने जीवन को सँवार सकते है और गतिशील बना सकते है।
मानव भी योग साधना से और लगन से
अपने जीवन को सँवार सकते है और गतिशील बना सकते है।
इठलाती हुई, बलखाती हुई,
मदमाती हुई चली नदियाँ एक नार रे।
खुशी खुशी चली नदियाँ एक नार रे।
सागर से मिलने को आतुरता से
अट्टहास करती पर्वतो की चट्टानों को खोलती
अपने घुँघरूओं की मदमाती आवाज को बिखेरती
अपने गंतव्य की ओर गतिशीलता का पाठ पढ़ाती हुई
रास्ते की कठिनाईयो को चीरती हुई
संघर्ष करो संघर्ष करो का संगीत सुनाती हुई
नदियाँ बढ़ती रही– बढ़ती रही,
नदियों ने कहा मंजिल की ओर बढ़ते रहो।
गतिशील बनो कठिनाईयों से जुझो
आगे बढ़ो आगे बढ़ो
अपने लक्ष्य प्राप्ति का बारम्बार प्रयास करो।
हिम्मत ना हार चल चला चल बढ़ आगे की ओर –
बढ़ते रहो, बढ़ते रहो, बढ़ते रहो
धैर्य रखो, दृढ़ निश्चयी बनो
अपने श्रेष्ठतम लक्ष्य को प्राप्त करो,
सफलता आपके कदमों को चूमेगी,
उठो ! निराश ना हो –
आगे बढ़ो, आगे बढ़ो
खेतो को सींचती हुई,
नदी अपने किनारों को उर्वरक बनाती हुई,
वृक्षों को लहलहाती हुई,
आगे बढ़ती रही।
वृक्ष फलों से लदे, झुके हुए नम्रता, सरलता का संदेश देते है।
पक्षियों की ऊँची उड़ान हमें सिखाती है कि बादलों का हृदय चीर कर ऊँची उड़ान भरो।
कलरव करते हुए पक्षी कहते है–कठिनाई से घबराओ नहीं हँसते रहो।

शिक्षा :–
जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलने को आतुर होती है। वैसे ही हम भी योग–भक्ति द्वारा अपने गुरुदेव से मिलने के लिए आतुर रहे।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

– आचार्य डॉ. दासलाल

यह बड़े हर्ष का विषय है कि अब संसार का अधिकतर व्यक्ति "**योग**" शब्द से परिचित हो रहा है। 21 जून '**योग दिवस**' के रूप में मनाया जा रहा है। हमारे देश के मान्य प्रधानमंत्री जी योग-निष्ठ हैं इसी आस्था के कारण उन्होंने योग को जीवन में अपनाने के लिये सारे संसार में अपील की है। आज मनुष्य जिस योग को प्राय: समझता है उसका क्षेत्र भी काफी संकीर्ण है। योग के वास्तविक स्वरूप को पूरा समझने में अभी समय लगेगा और इस समग्र योग को जीवन में उतारने का कार्य कठिन भी है।

' कृतयुग सब योगी विज्ञानी,

करि हरि ध्यान तरहि भव प्राणी।'

यह शब्द संत शिरोमणि तुलसी दास जी ने अपने रामचरितमानस में कही है। सतयुग के सभी लोग योगी होते थे और ध्यानयोग के बल से संसार सागर से पार उतरने वाले थे। आज के समय में ध्यानयोग के महत्व को समझने वाले लोग बहुत कम हैं।

आज लोग योग को बीमारियों को दूर करने के एक साधन के रूप में प्रयोग कर रहे है। योगासन, प्राणायाम तथा अन्य षट्कर्म की क्रियायें बीमारियों को दूर करने के लिये प्राचीन काल से ही की जाती रही हैं।

'**शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्**' मानवदेह लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों को सम्पन्न करने का एक प्रमुख साधन है। दुनियाँ में हर व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है किन्तु खानपान की गड़बड़ी तथा इन्द्रियों के असंयम से रोगग्रस्त हो जाता है। योग की चिकित्सा बिना औषधियों के प्रयोग से नि:शुल्क की जाती है तथा इसका कोई भी दुष्परिणाम नहीं होता है। योग की क्रियायों का निरन्तर अभ्यास करते रहने से मनुष्य सदा स्वस्थ रहता है। कदाचित् बीमार हो भी जाए तो योग की क्रियायों से शीघ्र स्वस्थ भी हो जाता है। दीर्घजीवन जीने का योग एक अचूक साधन है। योग की क्रियायें वात, पित्त और कफ को सन्तुलित बनाए रखती है। योग का महत्व वर्णन से परे है और इसका अर्थ भी बहुत व्यापक है। ईश्वर से हमारा नित्य का जो सम्बन्ध है उसे प्रदान करने का योग सक्षम साधन है। यह जन्म-मृत्यु रूपी बंधन का भी समूलोन्मूलन करने वाला है तथा जीवन के सभी प्रकार के दुखों से छुटकारा दिलाने में समर्थ है। गीता के छटे अध्याय में भगवान बताते हैं–

' युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु,

युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा ।

अर्थात् साधक अपने खानपान को युक्त रखे, उचित रखे।' **युक्त** ' शब्द में बहुत सी बातें छिपी हुई हैं, पहली बात है आधार न्यायपूर्वक कमाये गए धन से प्राप्त होना चाहिये। दिन और रात का विचार करके भोजन करना चाहिये। कुछ चीजें रात्रि में नहीं लेनी चाहिए। जैसा कि आयुर्वेद में आया है' **रात्रौ**

दधि न भुञ्जीत् ' अर्थात् रात को दही नही खाना चाहिए। मनुष्य का विहार अर्थात् घूमना फिरना युक्त होना चाहिए, आवश्यकतानुसार होना चाहिये। स्वप्न अर्थात् सोना और जागना भी उचित समय और उचित मात्रा में होना चाहिये। यदि साधक इस प्रकार से अपनी दिनचर्या को बना लेता है, वह स्वस्थ रहता हुआ योग साधना करता है तो उसका वह योग समस्त दु:खों को दूर करने वाला होता है। अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के इस पावनवेला में मेरा सभी साधकों से निवेदन है कि वे योग के प्रथम व द्वितीय अंग यम–नियम का पालन अवश्य करें। योगदर्शन के अनुसार पाँच यम – सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह है तथा पाँच नियम–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान है। ये यम–नियम योग एवं अध्यात्म जीवन की आधार शिला हैं। जब तक मनुष्य के अंदर झूठ, हिंसा, व्यभिचार, चोरी और अन्यायपूर्वक धन संग्रह करने की दुष्प्रवृत्तियाँ है तथा शौच, संतोष, धर्मपालन के प्रति दृढ़ता, स्वाध्याय, आत्मचिन्तन और ईश्वर शरणागति के भाव दृढ़ता से विद्यमान नहीं है तब तक हम योग जैसे पवित्र वस्तु से कोसों दूर ही माने जायेंगे तथा योग विद्या का जीवन में कोई लाभ उठा नहीं पायेंगे।

योग का वास्तविक अर्थ है कि जिस परमात्मा से हमारा नित्य का जो सम्बन्ध है वह हमारा स्थायी रूप से पूर्णतया स्थापित हो जाये क्योंकि जीव ईश्वर का अविनाशी अंश है उसमें विलय होना जीव का जन्म सिद्ध अधिकार है। बिना योग विद्या के यह सम्भव नहीं है। यही योग का यथार्थ में अर्थ है। भारत में आज के युग में भी सिद्धयोगियों की कमी नहीं है। सवासौ वर्ष पूर्व महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने योग की दुर्लभ विभूतियाँ दिखला दी थी। बन्द गुफा से सूक्ष्म शरीर से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय को प्रस्थान करना, एक ही समय में अनेक योग निर्मित शरीर बनाकर योग विद्या का प्रचार करना उनकी दिव्य चरित्र की विशेषतायें थी। पातञ्जल दर्शन की विभूतियों का सहज ही दर्शन उनके जीवन चरित्रों में हुआ है। मेरे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जो आनन्द कन्द महाप्रभु जी के मुख्य शिष्यों में से एक थे, योग विभूतियों से सम्पन्न सिद्धयोगी हुये है। योग दिवस के पावन अवसर पर ऐसे महान योगियों का स्मरण अत्यन्त प्रासंगिक है। अस्तु।

" **यथा राजा तथा प्रजा** " की इस उक्ति के अनुसार माननीय प्रधानमन्त्री जी ने सभी देश वासियों को योग को जीवन में अपनाने का जो स्वप्न देखा है वह अवश्य ही शनैः – शनैः पूरा व साकार हो रहा है। विश्व शान्ति का मूल मन्त्र भी योग ही है। योग को मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन में अपनाता हुआ विश्वशान्ति में सहायक बन सकेगा। भवरोग की औषधि भी योग ही है। सब प्राणियों की मंगल कामना से एक योगी बोल उठा है –

ये अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 21 जून को दुनिया के 192 देशों में बड़े धूम – धाम से मनाया गया। हमारे आश्रम सिद्धगुफा संवाई में भी काफी साधकों ने आकर आसन प्राणायाम किया और उत्सव को धूम–धाम से मनाया।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख भाग्भवेत्।

• योग–आसन

सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याध:,
सीवन्या: पार्श्वयो: क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्य गुल्फं च,
दक्ष गुल्फं तु सव्य के।
हस्तौ तु जान्वो: संस्थाप्य,
स्वांगुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्त वक्रो निरीक्षेत,
नासाग्रे सु समाहित:।
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवै,
बन्ध त्रयं संस्थानं कुरुते–चासनोत्तम्।।

विधि– पहले सीधे स्वभाव बैठकर अपने पैरों के दोनों गुल्फों का (अर्थात टखने को) सीवनी के दायें और बायें लगाये, दाहिने भाग में बायें टखने (एड़ी गाँठ) को एवं बायें भाग में दाहिने टखने को लगायें। इसके बाद दोनों हाथों की अंगुलियों को खूब फैलाकर दृढ़ता के साथ अपने दोनों घुटनों पर जमा कर रखें, उसके बाद सिंह के समान मुख फैलाकर लपलपाती हुई जीभ को निकाल कर भ्रमध्य को देखें, इसी का नाम सिंहासन है।

समय– साधारण पूर्वोक्त नियमानुसार शनै:शनै: अभ्यास को बढ़ायें।

लाभ– इस आसन में सिंह के बल की धारणा करने से दिल की शक्ति बढ़ती है। जालन्धर बन्ध के फलस्वरुप मन की एकाग्रता स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना

स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है। उसके साथ–साथ यह पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के वात रोगों का नाशक है। मूलबन्ध में अपान के उर्ध्वाकर्षण से और उपर से उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध के लगने से प्राणापान गति रोधन होकर कुण्डलनी का बोधक है। सब प्रकार आरोग्यप्रद एवं शक्ति वर्धक है।

सूचना

यह सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि श्री गुरु पूर्णिमा का महोत्सव श्री सिद्ध गुफा सवांई आश्रम में प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी 31 जुलाई 2015 को धूम धाम से मनाया जा रहा है। इसके दूसरे दिन ही 01 अगस्त से श्री रूद्रमहायज्ञ का आयोजन रहेगा जिसकी पूर्णाहुति 11 अगस्त को होगी। अतः साधकों से आग्रह है कि उक्त उत्सव में सम्मिलित होकर पुण्य के भागी बनें।

शुभेच्छु

डॉ. दासलाल आचार्य

व्यवस्थापक

श्री सिद्धगुफा सवांई

एत्मादपुर (आगरा)

योग वाशिष्ठ से साभार-

अविद्या के कार्य संसाररूप विषलता, विद्या एवं अविद्या के स्वरूप तथा उन दोनों से रहित परमार्थ-वस्तु का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं – श्रीराम ! यह अविद्या का कार्य संसारलता कब और किस प्रकार विकसित हुई, इसका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो ! यह अविद्या का कार्य संसारलता बड़े-बड़े मेरु आदि पर्वतरूप पर्वो से युक्त, ब्रह्माण्ड रूपी त्वचासे आवृत और जनरूपी पत्र, अंकुर आदि विकासों से युक्त है। ये तीनों लोक इसकी देह हैं। इस अविद्यारूपी लता में प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त करने वाले सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु और ज्ञान तो फल हैं और अज्ञान इसका मूल है। जन्म से ही अविद्या उत्पन्न होती है और वह बाद में जन्मान्तर रूप फल प्रदान करती है। जन्म से ही वह संसार के रूप में अपना अस्तित्व प्राप्त करती है और बाद में स्थिति रूप फल प्रदान करती है। वह अविद्या अज्ञान से वृद्धि प्राप्त करती है और बाद में अज्ञानरूप फल देती है। ज्ञान से आत्मा का अनुभव प्राप्त करती और अन्त में आत्मा का अनुभवरूप फल देती है। प्रतिदिन आकाश में चारों ओर से विकसित होने वाली चन्द्र, सूर्य आदि के सहित ग्रहरूप ज्योतियों की जो पंक्तियाँ हैं, वे ही इस सृष्टिरूपा लताके पुष्प हैं। रघुनन्दन ! आकाशमण्डल को व्याप्त कर स्थित इस लताके ऊपर प्रस्फुरित नक्षत्र और तारे ही पुष्पों की कलियाँ हैं। चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि के प्रकाश इस लता के पराग हैं। इसी पराग से यह शुभाङ्गी स्त्री के समान लोगों के मन का आकर्षण करती है। यह लता चित्त रूप हाथी द्वारा प्रकम्पित संकल्परूप मधुर कलनाद करने वाली कोकिलसे युक्त, इन्द्रियरूपी साँपों से वेष्टित और तृष्णा रूमी त्वचा से आच्छादित, चतुर्दश भुवन रूपी वनों से शोभित, सात समुद्ररूपी सुन्दर खाइयों से आवृत एवं स्त्रीरूप पुष्पसमूहों से शोभित, मन के स्पन्दरूप वायु से कम्पित, शास्त्रनिषिद्ध कर्म रूपी अजगर से व्याप्त, स्वर्ग की शोभारूपी पुष्पमण्डल से शोभित तथा जीवों की जीविका से पूर्ण एवं अनेक प्रकार के विषय भोगों की वासनारूप गन्धों से अज्ञों को उन्मत्त करने वाली है। वह अविद्यारूपा लता अनेक बार उत्पन्न हो चुकी है और उत्पन्न हो रही है, अनेक बार मर चुकी है और मर भी रही है। वह अतीत काल में थी और वर्तमान काल में भी है। वह सर्वदा असत्पदार्थ के सदृश होती हुई भी सत्य पदार्थ के सदृश बार-बार प्रतीत होती है तथा नित्य विनष्ट भी होती है। यह अविद्या का कार्य संसार निश्चय ही महती विषमयी लता है; क्योंकि अविचार से इसका सम्बन्ध होने पर यह तत्क्षण संसार रूपी विष से उत्पन्न होने वाली मूर्च्छा लाती है और विवेकपूर्वक सत्-असत् के विचार से तत्क्षण नष्ट हो जाती है। इसलिये यह विवेकी के लिये तो नष्ट हो जाती है और अविवेकी के लिये स्थित रहती है। यह सृष्टिरूपा लता जल के रूप में, पर्वतों के रूप में, नागों के रूपमें, देवताओं के रूप में, पृथिवी के रूप में, द्युलोक के रूप में, चन्द्र, सूर्य और तारों के रूपमें विस्तृत हो रही है। श्रीराम ! इन समस्त भुवनों में उत्कृष्ट प्रभाव से चारों ओर व्याप्त अथवा जीर्णता को प्राप्त हुए क्षुद्र तिनके के रूपमें जो कुछ यह दृश्य प्रतीत हो रहा है उस सबको अविद्या का कार्य होने से विनाशशील अविद्या ही समझना चाहिये। उसका विवेक-वैराग्यपूर्वक

यथार्थ ज्ञानद्वारा विनाश हो जाने पर सच्चिदानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

श्रीराम ! यहाँ दृश्यरूप जगत् के सम्बन्ध से और कल्पनाओं से रहित, परम शान्त, सबका आत्मस्वरूप केवल एक सच्चिदानन्दघ परमात्मा ही है। जिस प्रकार जल से तरङ्गें प्रकट होती हैं, वैसे ही उस परमात्मा के संकल्प से कलारूप प्रकृति प्रकट होती है। यह प्रकृति सत्त्व, रज, तम – त्रिगुणमयी है। सत्त्व आदि तीन गुणस्वरूप धर्मों से युक्त प्रकृति ही अविद्या (माया) है। यही प्राणियों का संसार है। इस प्रकृति से पार हो जाना ही परमपद की प्राप्ति है। जो कुछ भी यह दृश्य–प्रपञ्च दिखायी पड़ता है, वह सब इसी अविद्या का कार्य होने से उसी के आश्रित है। श्रीराम ! ऋषि, मुनि, सिद्ध, दिव्य नाग, विद्याधर, देवता– इनको प्रकृति के सात्त्विक, अंशस्वरूप जानो। प्रकृतिका जो शुद्ध सत्त्व–अंश है, वह विद्या है; उस विद्या से अविद्या उसी प्रकार उत्पन्न होती है, जिस प्रकार जलसे बुद्बुद उत्पन्न होते हैं, और जिस प्रकार बुदबुद जल में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार उस विद्यामें ही यह अविद्या विलीन भी हो जाती है। जैसे जल और तरङ्गकी द्वित्वभावना से ही भिन्नता है, वैसे ही विद्या और अविद्यादृष्टियों की भेदभावनासे ही भिन्नता है, वस्तुतः नहीं। जिस प्रकार परमार्थतः जल और तरङ्ग की एक रूपता ही है उसी प्रकार विद्या और अविद्या भी एक रूप है, पृथक् नहीं। वास्तव में एक परमात्मा से भिन्न विद्या और अविद्या नामकी कोई वस्तु ही नहीं है; अतः विद्या और अविद्या–दृष्टिका परित्याग करने पर यहाँ जो कुछ अवशिष्ट रहता है, वह परब्रह्म परमात्मा ही वास्तव में विद्यमान है, दूसरा नहीं, क्योंकि न अविद्या नामका पदार्थ है और न विद्या नामका ही पदार्थ है, इसलिये यह कल्पना व्यर्थ है। वास्तव में परमात्मा को छोड़कर बच रहने वाला कुछ भी नहीं है; यदि कुछ है तो वह एकमात्र चिन्मय परमात्मा ही है। जब परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं रहता, तब वह अज्ञान ही अविद्या कहलाता है और जब यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब वह ज्ञान ही अविद्याक्षय– इस नाम से कहा जाता है। आतप और छाया की तरह परस्पर विरुद्ध विद्या और अविद्या दोनों में से विद्या का अभाव होने पर अविद्या नामक मिथ्या कल्पना प्रकट होती है, जैसे सूर्य के अस्त हो जाने पर छाया–ही–छाया रह जाती है। श्रीराम ! अविद्या का विनाश हो जाने पर विद्या और अविद्या दोनों ही कल्पनाओं का विनाश हो जाता है। इन दोनों का अभाव हो जाने पर एक प्राप्तव्य सच्चिदानन्द परब्रह्म ही बच रहता है। जैसे समुद्र तरङ्गों का और निर्मल मणि रश्मियों का खजाना है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही अनन्त चराचर प्राणियों का खजाना है। जैसे अनन्त घड़ों में एक ही आकाश बाहर–भीतर परिपूर्ण है, उसी प्रकार समस्त जड़–चेतन वस्तुओं में बाहर और भीतर भी एक अविनाशी सत् वस्तुरूप विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सदा–सर्वदा परिपूर्ण है। जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (चुम्बक)– के सकाशमात्र से जड़ लोह क्रियाशील हो जाता है, वैसे ही एकमात्र चिन्मय परमात्मा के सकाशसे जड़ देहादि पदार्थ क्रियाशील होते हैं। जगत् के एकमात्र कारण उस चिन्मय परमात्मा में उसकी कल्पना से ही यह कल्पित दृश्य जगत् स्थित है– ठीक उसी प्रकार, जैसे चित्र–विचित्र चञ्चल तरङ्ग–समूह जल में स्थित है। वास्तव में अनन्त आकाश की तरह निराकार चिन्मय परमात्मा में यह कुछ भी नहीं है।

योग सिद्ध आश्रम पुरानी मंडी में विशाल योग शिविर

योग सिद्ध आश्रम पुरानी मंडी में पाँच दिवसीय योग विशाल शिविर का आयोजन 01 से 05 जून 2015 तक योगाचार्य ब्रह्मचारी डॉ. दास लाल शर्मा जी की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस शिविर में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त सुदूर क्षेत्रों से आए भक्तों ने भी बढ़–चढ़ कर भाग लिया।इनमें रौंड़ा (पानीपत) से आए श्री जसवन्त, पाले राम, शमशेर सिंह, व उनके साथ आया पूरा घरौंडा मण्डल,राजस्थान श्री गंगापुर सिटी से परम गुरु भक्त रामबाबू, घनश्याम, चन्द्रशेखर गुप्ता, परेश कुमार, ब्र. राजेश अलुपुर धाम से श्री मेहर बाबा, व अन्य कई भाई बहिनें प्रमुख थीं। इन सभी की उपस्थिति व सहयोग से यह कार्यक्रम अति सुन्दर बन गया।

योग कार्यक्रम प्रतिदिन प्रातः 5.30 बजे आरती व 6.30 बजे ध्यानाभ्यास के रूप में प्रारम्भ होता था।इसके पश्चात 7.30 बजे तक योगासन, प्राणायाम, सूत्र नेति, जल नेति का अभ्यास कराया गया। कई लोगों ने इन योगासनों व अन्य यौगिक क्रियाओं से लाभ उठाया। पुरुष वर्ग को अभ्यास योगाचार्य जी द्वारा करवाया गया जब कि महिला वर्ग बहिन श्रीमती विद्या कौशल की देखरेख में अभ्यासरत रहीं।

प्रातः 09 से 11 बजे तक का समय गीता पाठ एवं इसके श्लोकों में छिपे गूढ़ रहस्यों को योगाचार्य श्री दास लाल जी महाराज द्वारा सरल भाषा में उजागर करने का रहता था। प्रथम दिन 01 जून 2015 को योगाचार्य जी ने गीता के दसवें अध्याय व ग्याहरवें अध्याय के श्लोकों की विस्तार से व्याख्या की। उन्होंने ईश्वर की विभूतियों के बारे में बताया कि जहाँ भी कुछ विशेषता नजर आती है वह मेरे द्वारा ही है। जहाँ कहीं प्रकाश दिखता है, वह मेरा ही रूप है। मैं सब से सर्वश्रेष्ठ हूँ, ऐसा भगवान श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को समझाया। इसके पश्चात विश्वरूप दर्शन कराकर उसे जता दिया कि जिन कौरवों व उनकी सेना के साथ युद्ध किया जाना है, वे तो पहले ही भगवान द्वारा मारे जा चुके हैं। उसे तो केवल निमिन्त मात्र बनना है अतः उठकर युद्ध कर व शत्रुओं को मारकर राज्य सुख होगा।

तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रुन् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम।

मयैवेते निहताः पूर्वमेव

निमित्त मात्रं भवं सत्य साचिन् ।।

अगले दिन गीता के 12 वें व 13 वें अध्याय पर चर्चा की गई। भगवान श्री कृष्ण के विश्व रूप को देखकर अर्जुन के मन में अतीव श्रद्धा–भक्ति का उदय हो गया। श्री भगवान जी ने उसे बताया कि जो मेरे परायण रहने वाले भक्त जन सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को एकी भाव से भजते हैं। मैं शीघ्र ही उनका उद्धार कर देता हूँ, इसी प्रकार आचार्य जी ने क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ में अन्तर स्पष्ट करते हुए इनकी विस्तार से व्याख्या की।

03 जून को श्री योगाचार्य जी द्वारा गीता के 14 वें व 15 वें अध्याय के श्लोकों की विस्तार से व्याख्या की। ईश्वर की त्रिगुण मयी माया का रहस्य समझाया कि किस प्रकार ईश्वर परायण भक्त सत्व, रज तम गुणों को लाभकर ईश्वर को प्राप्त होता है। ईश्वर ही सब प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। इससे ही स्मृति, ज्ञान होता है, वही जानने योग्य है इसीलिए उसे पुरुषोत्तम कहते हैं।

इसी प्रकार अगले दो दिनों में गीता के 16,17 व 18 वें अध्याओं का विधिवत एक एक श्लोक का विस्तार से अर्थ समझाया।

इसके अतिरिक्त श्री योगाचार्य जी द्वारा इस बात पर विशेष रूप से बल दिया गया कि यह योग का विषय अत्यन्त दुरुह होने के कारण केवल कहने मात्र से सिद्ध नहीं होगा। जब तक महर्षि पतंजली द्वारा बताए गए अष्टांग योग साधना नहीं करोगे, जब तक यग नियमों का पालन नही करोगे, अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को अपने जीवन में नहीं अपनाओगे, तब तक योग सिद्ध नहीं होगा। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमें ऐसे सर्व समर्थ सिद्धयोगी सद्गुरु मिले हैं। श्री कृष्ण भगवान जी ने भागवत में स्पष्ट कहा है–

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभम्

प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्

मयानुकूलेन नभस्वतेरिम्

पुमान् भवाब्धिं न तरेत स आत्महा।

अर्थात् यह मानव शरीर दुर्लभ होने पर भी प्राप्त ही है, संसार पार करने के लिए यह एक सुदृढ़ नौका है। शरणागति में आ जाने पर गुरुदेव इसके कर्णधार ही अनुकूल हवा बनाकर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने वाले हैं। इतने पर भी जो इस शरीर के द्वारा संसार का नहीं हो पाता, वह आत्म हत्यारा है।

यह भी एक सुखद संयोग है कि इसी माह 21 तारीख (21 जून 2015) को विश्व योग दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। लेकिन इसकी सार्थकता तभी सिद्ध होगी यदि इस दिन सारे विश्व के लोग यह प्रण करें कि हम आज से महर्षि पतंजली जी के अष्टांग योग को अपनाकर उनके बताए हुए यम–नियमों का पालन करते हुए योग मार्ग पर अग्रसर होंगे व अपना जीवन सार्थक करेंगे। केवल योग को योगा कहने या शारीरिक व्यायाम करने मात्र से योग सिद्ध नहीं होगा।

फिर भी यह मानकर कि कुछ नई शुरुआत तो हुई है, विश्व में योग की सुगबुगाहट तो हुई है, योगाचार्य जी ने इस पहल की प्रशंसा की और कामना की कि भारत वर्ष से प्रारम्भ हुआ यह योग सारे विश्व में प्रसार पाए एवं समस्त जनों के लिए लाभकारी हो।

इस प्रकार इस पांच दिवसीय योग विज्ञान शिविर का 05 जून 2015 को विशाल भंडारे के साथ समापन हुआ।

सच्चिदानन्द रुपाय व्यापिने परमात्मने।

नत: श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने।।

अर्थात् सच्चिदानन्द रूप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं।

काया व्यू की रचना

शास्त्र का लेख है :–

यस्मिन देशे वसेद्योगी ध्यान योग विचक्षण: ।

सोपि देशो भवेत् पूत: किम पुनस्तस्य बान्धव: ।।

अर्थात्, जिस स्थान पर एक ध्यान योगी वास करता है उसके तेजोमय परमाणुओं से वह देश पवित्र हो जाता है, उसके अन्य भाई बान्धुवों का तो कहना ही क्या ? जिस दिन से श्री प्रभु जी ने नैपाल हिमालय से लौटकर के सवाँई गाँव में पदार्पण किया, उसी दिन से स्वभाव से ही गाँव में सुख सौभाग्य का वास हो गया। श्री सिद्ध गुफा पर लोगों का यातायात बराबर बना रहने लगा। लोग तरह तरह की मनोकामनायें लेकर आते। कोई व्यक्त कर पाते थे और कोई नहीं। किन्तु सभी मनवांछित फल पाते थे। कल्पवृक्ष के नीचे बैठने वाले व्यक्ति जिस प्रकार से पूर्ण रूप से अपनी मनोकामना लाभ कर लेते हैं उसी प्रकार से श्री प्रभु जी के चरणार्विन्द में जो लोग सद्भावना से आये, वे सभी सफल मनोरथ होकर गये।

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम् ।

की युक्ति को चरितार्थ करने वाली विलक्षण घटनायें रात–दिन घटित होती थीं। हमें एक ब्राह्मण ने बतलाया, उसका बिल्कुल भी बुद्धि का विकास नहीं था, केवल मात्र श्री प्रभु जी के चरणार्विन्द के सत्संग को पाकर के वह कृतार्थ हो गया। वह मूकवत श्री प्रभु जी के चरण कमलों में बैठा रहा करता था। शरीर से जो बन जाती, सेवा करता रहता था। एक दिन एकान्त में अत्यन्त विनम्र भाव से आये उस दीन ब्राह्मण को देखकर के दीनबन्धु श्री प्रभु जी ने कहा– ले यह विभूति खा ले। आज से तू पंडित माना जायेगा और आसपास के समुदाय में पूर्ण सम्मानित होगा। इसी से तुझे अर्थलाभ भी होगा। श्री प्रभु जी के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी अमोघ थी। जो कुछ मुख से निकला, वह तत्काल हो गया। वह दीन ब्राह्मण थोड़े ही समय में ऊँचे पंडितों में स्थान पा गया। थोड़ा पढ़ा लिखा होने पर भी पंडितों में गणना पा गया व घर धन धान्य से परिपूर्ण हो गया। यह एत्मादपुर का निवासी था। इसका नाम रामचरन था। लोग उसे शास्त्री जी कह करके सम्मानित किया करते थे। इसी प्रकार से अनेक लोग आये। उन्होंने अपनी मनो वत् कामना पाई व कृतकृत्य हुये। मानस सत्संग का प्रवाह अनवरत जारी रहता था।

एक बार संयोगवश कोई पुण्य पर्व का समय आया। सवाँई के वासी आसपास के सभी लोग गंगा स्नान के लिए गये। श्री प्रभु जी से लोगों ने आग्रह किया कि प्रभो ! आप भी गंगा स्नान करने के लिए चलिये। किन्तु श्री प्रभु जी ने इंकार कर दिया और कहा कि भाई तुम लोग जाओ

अभी हम नहीं चल रहे हैं, जब हमारी अभिरुचि होगी तो हम चले जायेंगे। सत्संगी लोगों को तीव्र अभिलाषा थी कि प्रभु जी साथ चलें। किन्तु इस प्रकार इन्कार कर देने पर लोग अपनी –अपनी अभिरुचि के अनुसार गंगा स्नान को चले गये। किन्तु लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि उसी दिन श्री प्रभु जी भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न लोगों को मिले और सवाँई गाँव में उसी प्रकार से श्री सिद्ध गुफा पर विद्यमान रहे। श्री सिद्धगुफा के सामने कदम के वृक्ष के नीचे एक अखाड़ा बनाया हुआ था। उस दिन वहाँ बच्चों को कुश्ती लड़ाते रहे। गंगा स्नान को जाने वाले लोगों ने बड़ा आश्चर्य देखा कि श्री महाराज जी उनके साथ भी रहे। उसी समय अनेकों स्थानों पर कई लोगों से मिले। सोरों में बौहरे कन्हीराम व ठा. लालाराम को स्नान करते हुए मिले। राजघाट में बौ. खेतपाल को स्नान करते हुए मिले। कानपुर में बौ. प्यारे लाल को गंगा स्नान करते मिले। अलीगढ़ में स्टेशन पर ठा. कर्णसिंह को मिले। इस प्रकार श्री प्रभु जी एक ही समय भिन्न–भिन्न स्थानों पर लोगों को मिले। जिस समय गाँव के सब लोग वापिस आये तो श्री प्रभु जी के चरणार्विन्द में आकर श्री प्रभुजी के स्थान–स्थान पर मिलने की बातें करने लगे। जिस समय जब स्थान–स्थान पर श्री प्रभु जी के दर्शन किये उसी समय श्री प्रभु जी श्री सिद्ध गुफा में विराजमान थे। जो व्यक्ति उनके पास उस समय रहे वह कहने लगे कि महाराज जी तो हमारे पास ही रहे हैं और कुश्ती लड़ाते रहे हैं। इस बात को सुनकर गाँव में आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और वैसेक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है – सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; वह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है!

– महर्षि अरविन्द

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सींगना (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ।।

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।